॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् ॥

ॐ

आध्यात्मिक युगपुरुष अनन्त श्री रामजी महाराज के
परम शिष्य सन्त श्री हरिसिंहजी कृत

श्री

उत्तम ज्ञान कटारी

टीका सहित छन्दों का समीक्षात्मक विश्लेषण एवं संगीतमय भजनों की त्रिवेणी
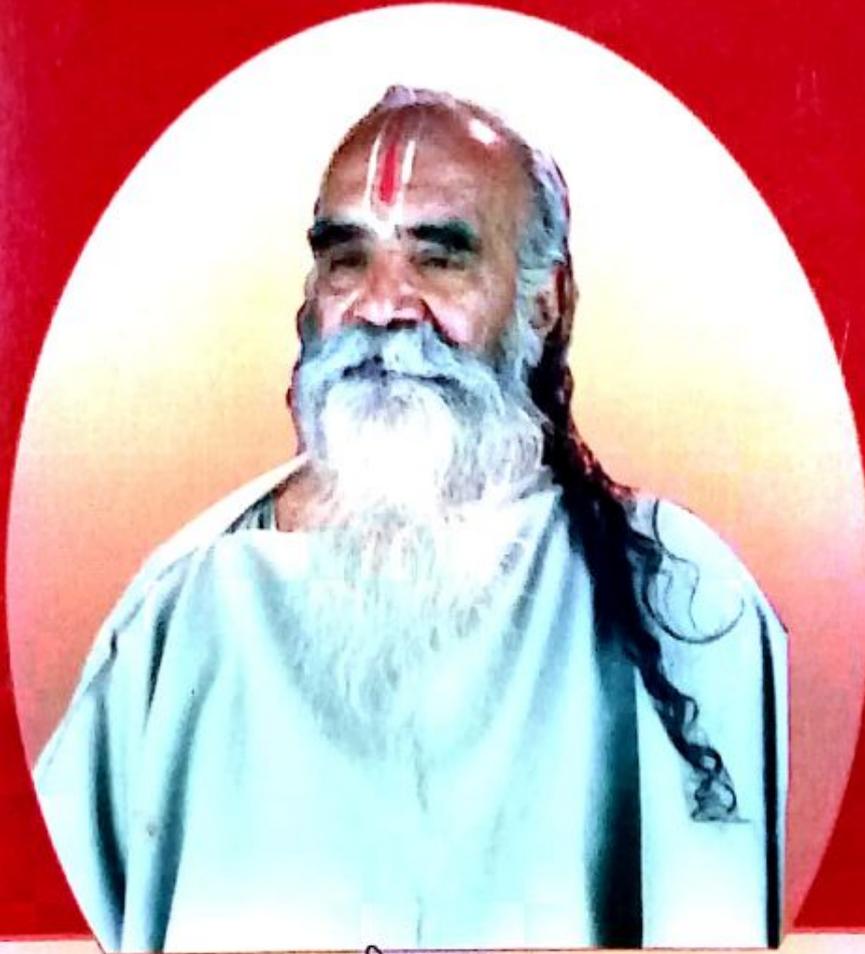
टीकाकार -

स्वामी श्री रामप्रकाशाचार्य जी महाराज 'अच्युत'

स्वामी रामप्रकाशाचार्य 'अच्युत'

जन्म—

श्रीवैष्णव कुल अग्रावत, जन्मभूमि–सिन्ध मीरपुरखास (अविभाजित भारत) में वि. सं. 1987 (ई. 1930)

गुरुदीक्षा—

वि.सं. 1992 मार्गशीर्ष सुदि 11 को
श्री श्री 108 श्री स्वामी उत्तमरामजी महाराज 'वैरागी'
संस्थापक : उत्तम आश्रम (सिन्ध मीरपुर खास) एवं जोधपुर

भेषदीक्षा—

श्रीवैष्णव रामानन्दीय अग्रद्वारस्थ वैरागी गुरु परम्परा में वि. सं. 1999 में विरक्त साधु (बाल वैरागी) शाखोच्चार 'अच्युत' गौत्र।

आचार्य गद्दी पदासीन—

जोधपुर – वि.सं. 2034 (ई. सन् 1977)

कार्यकाल—

सन् 1955 से अद्यावधि पर्यन्त

- ❑ पूर्वाचार्यों के आलोकित गुरु-स्मृति 17 ग्रन्थों का सम्पादन, पूर्वाचार्य शताब्दी महोत्सव की चार स्मारिकाएँ प्रकाशित।
- ❑ स्वरचित रचना में 75 ग्रन्थों का प्रकाशन
- ❑ बाहरी विविध सन्तों की रचना के 85 ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन एवं सामाजिक कार्य
- ❑ क्लिष्ट, गूढ़ार्थ, विपर्य्यय पठन में महापुरुषों के ग्रन्थों की कई टीकाएँ लोकार्पित हुई हैं। उनमें से प्रमुख – 'सुखराम दर्पण' 'नासकेत गीता' 'आध्यात्मिक सन्तवाणी शब्दकोश', 'हरिसागर' 'अचलराम ग्रन्थावली' (चार भाग में)।

विशिष्ट शोध पुस्तकें—

- ❑ 'आचार्य सुबोध चरितामृत', 'पिंगल रहस्य', 'एक लाख वर्षीय कैलेण्डर', 'ज्योतिष दोहावली', 'नशा खण्डन दर्पण', 'विश्वकर्मा कला दर्शन', 'भारतीय समाज दर्शन', 'अध्यात्म दर्शन (दो खण्ड)', 'कामधेनु' 'सर्वदर्शन वाद कोश' 'भारत का व्यास'
- ❑ विविध पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों में विषय विविधता से भरे अनेक लेख प्रकाशित।
- ❑ आकाशवाणी-केन्द्र से कई वार्ताएँ प्रसारित।

पुरस्कार व सम्मान—

- ❑ मानद **'स्वतंत्रता सेनानी'**
- ❑ राजस्थान राज्यपाल द्वारा सामाजिक-साहित्यिक क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिये **'डॉ. अम्बेडकर सम्मान'**
- ❑ जोधपुर नगर निगम द्वारा **'जोधपुर गौरव'**
- ❑ **'मेघ-मार्तण्ड'**, **'समाज शिरोमणि'**, **'छन्द-विशेषज्ञ'**
- ❑ **'ज्योतिष वराह मिहिर'**, **'कला आराधक'**

शैक्षणिक योग्यता—

- ❑ 'तर्कवागीश', 'आयुर्वेद-रत्न', 'साहित्य-शास्त्री', 'साहित्याचार्य', 'कविभूषण', 'विद्यावाचस्पति', 'रामायणाचार्य', 'धर्मवारिधि', 'R.M.P.'

ॐ

॥ श्री हरि गुरु सच्चिदानन्दाय नमः ॥

वेदान्त दर्शन के मूर्धन्य विद्वान, पंचीकरण ग्रन्थ के प्रणेता
अनन्त श्री रामजी महाराज के परम शिष्य सन्त श्री हरिसिंहजी महाराज कृत

श्री

उत्तम ज्ञान कटारी

टीका सहित छन्दों का समीक्षात्मक विश्लेषण एवं संगीतमय भजनों की त्रिवेणी

टीकाकार :

श्री वैष्णव विरक्त गूदड़ गद्दी जोधपुर के आद्यपीठाधीश्वर अनन्त श्री स्वामी हरिरामजी वैरागी की शिष्यानुगत परम्परा में श्री श्री १०८ श्री स्वामी उत्तमराम जी महाराज के कृपापात्र शताधिक्य सत्साहित्यक ग्रन्थों के रचयिता, यशस्वी टीकाकार, सम्पादक एवं लेखक

तत्त्वज्ञ स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी महाराज "अच्युत"

श्रीमहन्त - उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ), जोधपुर

उत्तम प्रकाशन, जोधपुर-३४२००६

हरि गुरुभक्तों के सहयोग से —

❖ प्रकाशक :

उत्तम प्रकाशन

उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ)

कागातीर्थ मार्ग, जोधपुर-३४२००६

मोबाइल : 9414418155

फोन/फैक्स : ०२९१-२५४७०२४

E-mail : uttamashram@gmail.com

❖ ISBN : 978-81-88138-67-8

❖ **प्रथम संस्करण : २०१८ ई०** **विक्रम संवत् २०७५**

❖ **पुनर्प्रकाशन सेवा** : ६०/- साठ रुपये मात्र

❖ लेजर टाइपसेटिंग :
उत्तम कम्प्यूटर
जोधपुर.

मुद्रक :
हिंगलाज ऑफसेट प्रिंटर्स
जोधपुर

UTTAM GYAN KATARI

Edited by : Swami Ramprakashachaya Ji Maharaj

Publisher : Uttam Ashram (Acharya Peeth), Jodhpur-342 006. Phone: 0291-2547024

First Edition : 2018 **Price Rs. : 60.00**

टीकाकार की श्यामानन लेखनी से –

ग्रन्थ के संदर्भ एक बात

उत्तम भारत देश में ऋषि–मुनि कवि कोविद, ज्ञान–ध्यानी सन्त सती शूरवीर सभी ने अपने क्षेत्र की निर्भीक चर्चा की है।

ऐसे ही (लगभग 250 वर्ष पूर्व) इतिहास के देदीप्यमान आध्यात्मिक जगत के सूर्य 'पंचीकरण' ग्रंथ के रचयिता ब्रह्मवेता श्रीराम जी महाराज के शिष्य लाहोर निवासी ब्रह्मनिष्ठ तत्वदर्शी श्री सन्त हरिसिंह जी महाराज कृत ''उत्तम ज्ञान कटारी'' उपयुक्त गुरु–शिष्य के दोनों रचना–ग्रन्थ अमूल्य लघु रत्न के समान ख्याति प्राप्त विद्वानों का कण्ठाभरण रहा है।

श्री वैष्णव विरक्त गूदड़ गद्दी जोधपु के तृतीय पीठाधीश्वर तत्वदर्शी श्री स्वामी सुखरामजी महाराज की निर्वाण शताब्दी के महोत्सव वि.सं. 2057 (2000 ई.) में भक्तों के सुलभ पठनार्थ इस का 'स्वाध्याय वेदान्त दर्शन' नामक पांच ग्रन्थों का संकलन उत्तम प्रकाशन जोधपुर द्वारा प्रकाशित हुआ था।

पचास वर्ष पूर्व के तत्वदर्शी महात्मा गण परम उत्तम जिज्ञासु (मुमुक्षु) के हृदय में वीतराग जागृति करने हेतु ''ज्ञानकटारी'' को कण्ठस्थ करवाने में प्राथमिकता देते थे कि जिज्ञासु दिखावे के पाखण्ड की दिशा में नहीं जा सके, तदर्थ प्रस्तुत 'दम्भ प्रताड़न यष्ठिका'' के नाम से पुस्तिका जानी जाती थी।

आशान्वित है कि उपासक विद्वान भक्तों की अपेक्षा पूर्ति में टीकाकरण प्रकाशन दिया गया है, इग्गें रोगग्रस्त वृद्धायु कारण से रही कर्णापाटव टंकण इत्यादि में रही अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ने से देवत्व का परिचय देंगे।

उत्तम आश्रम (आचार्यपीठ)
रक्षा बन्धन, वि.सं. 2075

विश्व हितेच्छु
स्वामी रामप्रकाशाचार्य 'अच्युत'

उत्तम ज्ञान कटारी

की

विषयानक्रमणिका

अक्षरार्थ (शैक्षणिक मंगल) कुण्डलिया

ह रदम हरि से हेत कर, **जी** वन की गति जान ।
रि श्वत चोर्यादि दोष तज, **या** विधि जप ले ज्ञान ॥
रा विधि जप ले ज्ञान, **रा** म प्रणव धुनि लावे ।
म हरम जाने गुरु कृपा, **म** रजीवा मुक्ति समावे ॥
''हरिराम'' ''जीयारामजी'', महाराज प्रसाद कर ।
सतगरु कृपा केवली, ''**रामप्रकाश**'' नवाज हर ॥1॥

सु ख केवल निज ज्ञान में अ दभुत लखे अवधूत ।
ख टपट प्रपंच खोय कर, **च** ले चतुर पथ सूत ॥
–चले चतुर पथ सूत, **ल** क्ष्मण रेखा धारे ।
रा ज योग लय चिंतन कर, रा म में रमत विचारे ॥
म हर करे ''सुखराम'' जी, **म** तिधर ''अचलराम''॥
सौम्य मूर्ति गुरुदेव की, ''रामपकाश'' सुखधाम ॥2॥

उ त्तम भाग्य मानव भयो, रा म भये कृपाल ।
त न मन उज्जवल भाव कर, **म** द विद्या धन टाल ॥
म द विद्या धन टाल, **प्र** वृत्ति सकल निवारो ।
रा म हृदय हरदम जपो, **का** म शुभ सतसंग सारो ॥
म हर होय गुरु उत्तम की, **श** मन होय भव गम ।
''उत्तम राम प्रकाश'' की, लखो रमझ उत्तम ॥3॥

श्री वैष्णव रामानन्दी, अग्रद्वारा सो जान ।
सन्तदास गुरु पीढ़ी ते, शाखा परम्परा ज्ञान ॥
शाखा परम्परा ज्ञान, अग्रावत रसिक पहिचानो ।
आचार्य पीठ सो जोधपुर, वैरागी मत को जानो ॥
आद्य गुरु हरिरामजी, श्री सम्प्रदाय संत वन्द ।
''रामप्रकाश'' वन्दन करे, श्री वैष्णव रामानन्द ॥4॥

दोहा – उत्तम गुरु हरि सतगुरु, हरि हर सन्त कृपाल ।
''रामप्रकाश'' वन्दन करे, द्रवहू परम दयाल ॥5॥

ॐ

श्री हरि गुरु सच्चिदानन्दाय नमः

ब्रह्मनिष्ट संत श्री हरिसिंहजी महाराज कृत

सटीक

उत्तम ज्ञान कटारी

अर्थात

दम्भ प्रताड़न यष्ठिका

दोहा छन्द

वृत्ति व्याप्ति एकग्र चित, यही हमारो ध्यान।
ब्रह्म रूप गुरु राम को, नमस्कार सोई मान ।।1।।

शब्दार्थ–वृत्ति=अन्तःकरण द्वारा निकसित विचार विकसित ध्येय **वस्तु**=वासना मयी वृति इन्द्रियों द्वारा विषय हेय–प्रेय ज्ञान ग्रहण करने वाली धारा।

ऐसा कोई काम, जिसमें मनुष्य कुशल हो एवं जिस के आश्रय से अपना निर्वाह करता हो। **जीविका** = रोजी , किसी को सहायतार्थ दिया जाने वाला धन। सूत्रों अर्थात् पद्यों की व्याख्या। साहित्य में शब्द योजना की यह विशेषता है कि जिस से भाषा–रचना में माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुण आते है। नाटक में विषय के विचार से भारती, सरस्वती, कौशिकी और आरभटी प्रकृति कहै गये है। योग के अनुसार चित्त की वह पांच प्रकार की अवस्थाऐं – क्षिप्त, विक्षिप्त, मुढ, एकाग्र, निरुद्ध। वह कर्त्तव्य जो दूसरे पर आश्रित या अवलम्बित हो।

वैसे अन्तस्थ प्रकृति भाव के अनुसार शब्द से अनेक योग–संयोग की क्रियाओं में। सम्बोधन किये जाते है। जैसे की वृति व्याप्ति, अति व्याप्ति, योग वृत्ति, भोग वृति, योजन वृति, फल वृति, अव्याप्त वृति इत्यादि कईक वृतियों का उल्लेख व्याख्याकारों द्वारा किया गया है।

भावार्थ–ग्रन्थकार सन्त मंगलाचरण में ग्रन्थ के आदि में व्यापक–व्याप्य भाव से अपनी एकाग्र व्याप्त वृति जो लक्ष्य वे धन में समर्थ स्थिर चिर वृति जो स्वयं चित–बुद्धि

का ध्यान है। उसी ध्यान के ध्येय रूप ब्रह्म स्वरूप सतगुरु अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म सतगुरु देव और रमणीय रमता–राम जो अभिन्न तत्व है, उन का ध्यान ही हमारा प्रणाम है। यह क्यों और कैसे सम्भव है? अतः चित्तवृति का व्याप्त ध्याम है, वही प्रणाम मय है।

अद्वद स्वरूप प्रणाम

परम गुरु श्री राम को, चरणे राखूँ ध्यान।
प्रस्तावी मै कहत हूँ, गन्थ कटारी ज्ञान ।।2।।

भावार्थ–निर्गुण वस्तु निर्देश रूप मंगलाचरण के बाद अब सगुण वस्तु निर्देश मंगलाचरण में परमगुरु परमात्मा स्वरूप सतगुरु श्री राम जी महाराज के चरणाम्बुज का ध्यान करके अर्थात् शब्द–उपदेश की श्रुति चरण (उनके उपदेशित प्रणव मन्त्र) को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावना में उत्तम उद्‌बोधन रूप 'ज्ञान कटारी' नामक ग्रन्थ की पद्यात्मक रचना करता हूँ।

इन्दव छन्द

लोह कटारी सबै कोऊ बाँधत, ज्ञान कटारी सो दुर्लभ भाई।
लोह कटारी जो खाय मरे पुनि, सो अवतार धरे जग मांई ।।
ज्ञान कटारी को खावत है सन्त, ब्रह्म स्वरूप अखण्ड हो जाई।
फेर कबहू जन्मे ना मरे, 'हरिसिंह' नहीं कछु ताप रहाई ।।3।।

शब्दार्थ–कटारी=एक लोहे का दुधारा नोकदार हथियार, जो प्रायः एक बालिस्त (6 से 9 इन्च) के बराब्र होता है।

भावार्थ–हे भाई ! संसार के कर्म वीर पुरुष अपने अस्त्र–शस्त्र में लोहे की कटारी को भी बाँधे रखते हे। लोहे की छोटी कटारी सरदार (सिख) जन **काँखा=सोती** या कमर में बांधे रखते है। यह कटारी का शस्त्र वीर पुरुष बांधते या युद्ध स्थल में मार खाकर मारते–मरते है, परन्तु **ज्ञान कटारी** की मार खाकर मरना बड़ा दुर्लभ है।

लोह कटारी के घाव से मरने वाले बहुत होते है, वे पुनः अज्ञान सहित अविद्या जनित काम, क्रोध, मोहादि स्थूल–सुक्ष्म विकारों के रहते कर्म–भावना (वासना) के अनुसार पुनर्जन्म धारण करके आते रहते है।

सन्त जन साधन सहित उत्तम ज्ञान कटारी के घाव से अज्ञान उपार्जित तमो अविद्या–माया जनित काम, क्रोध, मोहादि समूह संशय का नाश करके सन्त–साधक सत चेतन आनन्द मय ब्रह्मानन्द में पदान्वित (समाहित) हो जाते है।

वे संशय से तरने (मरने) वाले फिर पुनर्जन्म अर्थात लख चौरासी के भव भ्रमण

(आवागमन) में नहीं आते हैं। ग्रन्थ कर्ता संत हरिसिंह सम्बोधन देते है कि ऐसे निवृति पाकर जीवन्मुक्ति के पंच प्रयोजन (सर्वदुःख निवृत्ति, परमानन्द प्राप्ति ज्ञान रक्षा, तप, सिंवादाभाव) की प्राप्ति कर लेते है।

क्षेपक–इन्दव छन्द

ताप रू पाप के सर्व दुःख से, पाय निवृति सोई फल पाई।
नित्य परमानन्द, ज्ञान रक्षा कर, तप तितिक्षा में देह रहाई॥
सो विसंवादाभाव को पावत है वर, संशय सर्व सन्देह मिटाई।
'रामप्रकाश' खा ज्ञान काटारी सो, सतगुरु, उत्तमराम समाई॥1॥

कर्म धर्म रू शर्म धर्म सो, आन धर्म हित खाय कटारी।
लोह कटारी ते जन्म रू मरन सो, बारम्बार धरे भवधारी॥
धर्म–परमधर्म ज्ञान कटारी सो, हो निष्काम मरे चित सारी।
'रामप्रकाश' उत्तम गुरु पाय के, जन्म रु मरण के दुःख विडारी॥2॥

कर्म वीर रू शर्म वीर मों दानवीर सो खाय कटारी।
भौतिक यश मर्यादा साधत, अमर्यादित सो नर्क मंझारी॥
परम धर्म हित ज्ञान कटारी ते, पावत पांच प्रयोजन भारी।
'रामप्रकाश' उत्तम गुरु पायके, मरे तरे भव, जीव न धारी॥3॥

मनोहर छन्द

ज्ञान को प्रकाश सो तो, हीरा मणि रत्न जैसो।
ताको अँधकार कहै, पामर ठहराय के॥
ऐसो हि अन्याय करे, ताहि से चौरासी फिरे।
वेर वेर कहा कहों, तोहि समझाय के॥
धिक तेरो जीवन है, मिथ्या नर देह धरी।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के॥
हूँ तो 'हरिसिंह' सुख–दुःख हूं ते न्यारो खाय।
ज्ञान की कटारी सत–गुरु गम पायके॥4॥

शब्दार्थ–हीरा=एक प्रकार का खनिज पदार्थ रत्न जो अपनी चमक तथा अतिकठोरता लिये बहुमूल्य के लिये प्रसिद्ध है। नवनिधि में से एक जिसे एरन पर रख कर

घन की चोट मारने पर भी नहीं टूटता है। **मणि**=बहुमूल्य रत्न, **खनिज**=जवाहर, नवनिधि का एक, **मिथ्या**=असत, नाशवान, कल्पित,झूठा।

भावार्थ–आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश तत्व दर्शन हीरा–मणि के समान विशेष बहु मूल्य अज्ञानान्धकार निवृत्ति कारक है। विपरीत भावना ग्रस्त अज्ञानी जन ऐसे ज्ञान प्रकाश का महत्व नहीं जानते, अंधकार में मन मानंदी मानते है।

विपरीत भावना तथा असंभावना (प्रमाणगत एवं प्रमेयगत) रत संशयात्मा के नास्तिक मत वादी अन्याय पूर्ण कृत्य के कारण लख चौरासी में भव–भ्रमण आवागमन करते हैं। उन्हें वार–वार कैसे ? क्या ? सम्बोधन करते रहते है। हे अज्ञ तज्ञानुवृति जन ! तुम्हें समझा कर कहता हूँ।

हे पामर प्राणी ! तेरा जीवन धिकारने योग्य है कि यह मानव शरीर बिना उद्देश्य के व्यर्थ ही धारण किया है। हे मूर्ख ! लोह की कटारी या ज्ञान की कटारी खा कर क्यों नहीं मर जाता है।

पापों का हरण कर्ता ज्ञान का सिंहवत गर्जना कर के रचनाकार हरिसिंह कहते हैं कि – मैं ज्ञान कटारी से मरने के कारण परमानन्द स्वरूप हूँ, सुख–दुःख रूप त्रय ताप रहित चेतन तत्व हूँ। यह सतगुरु के कृपांकुर गम (रहस्य) प्राप्त करनेसे ज्ञान कटारी प्राप्त हुई।

क्षेपक–इन्दव छन्द

गुरु गम ज्ञान कटारी को पाय के, आनन्द रूप अखण्ड अथाई।
चेत जिज्ञासु अज्ञ तज्ञानुवृति, जीवन सफल करो निज पाई॥
भौतिक धन में गर्व रहयो शठ, जड़ व्यर्थ अरु नास कहाई।
रामप्रकाश उत्तम सतगुरु से, उत्तम ज्ञान कटारी को लाई॥4॥

मनोहर छन्द

हीरा मणि रत्न सो तो, जड़ ही प्रकाश आप।
आप को ना जाने तासु, जानों एक देसी है॥
ज्ञान तो स्वयं प्रकाश, आप को भी जाने पुनि।
चिदानन्द एक रस, शुद्ध सर्व देसी है॥
जान तूं स्वरूप तेरो, अस्ति भाति प्रिय ऐसो।
दुःख रूप मान रह्यो, तेरी मति कैसी है॥
कहे 'हरिसिंह' मिथ्या, देह को तू माने मूढ।
मेरो कह्यो माने तो ये, कटारी खाय जैसी है॥5॥

भावार्थ–पूर्व छन्द में हीरा मणि रत्न की तुलना ज्ञान कटारी से की गई थी, किन्तु अब यहां **ज्ञान कटारी** की विशेषता पूर्व अधिकता दरसाते है।

हे मानव ! हीरा= मणि इत्यादि खनिज रत्न पदार्थ बहुमल्य होते हुए भी उनकी चमक दमक का प्रकाश अल्पज्ञ, एकदेशी जड़ और नासवान है। वे अपनेआप को भी नहीं जानते, जहां है वहीं सीमित है।

तत्व ज्ञान स्वयं प्रकाशित–पर प्रकाशक है, आप को और अन्य को भी जाननहार साक्षी है। जो चेतन आनन्द रूप, एक रस, व्यापक व्याप्य शुद्ध सर्वदेसी प्रकाशमान देदीप्य है।

हे मानव ! ऐसा सत (अस्ति) चित (भाति) आनन्द (प्रिय) तेरे स्वरूप को जान कर दृढ़ निश्चय कर। तूं अपने आप को दुःख रूप संताप–संतप्त मान रहा है। यह तेरी विपरीत बुद्धि कैसी हो रही है ?

कवि हरिसिंह जी सम्बोधन देते है – हे मूढ ! तू इस नाशवान मिथ्या देह में अहं रूप अस्तित्व मान रहा है, तुम ज्ञानवान सन्तों (कवि) का कहना मान लो कि – यह 'ज्ञान कटारी' तेरे स्वयं घात करने योग्य है।

मनोहर छन्द

भक्ति सो ना जाने प्रभु, न्यारो करि माने ऐसे।
होत है हरि को द्रोही, फेर चित चाय के ।।
भक्ति अरू ज्ञान एक, भिन्न ही ना जाने कोउ।
एकता है भक्ति कृष्ण, कही गीता गाय के ।।
लोक हूँ रिझावे राधा–कृष्ण को विहार गावे।
निन्दा में स्तुति माने, मन में सराय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।6।।

भावार्थ–हे मानव ! भक्ति का स्वरूप जाने बिना परमात्मा का प्रभुत्व अपने से भिन्न कर के मानता है, ऐसे पाप हर्ता हरि 'हरति पापानि स हरिः' का विरोधी (दुष्टभाव) होकर भी चित से कल्याण की चाहना करता है ?

वस्तुतः भक्ति (भय की गति) और ज्ञान (अभय पद) एक ही है, इसे कोई भिन्नता कर के नहीं (मत) मान लें। यह भक्ति और ज्ञान की एकता का दर्शन श्री कृष्ण ने गीता के रूप में तत्वार्थ कथन करके कहा है।

शब्दार्थ

ज्ञान साधन	सामञ्जस्य	भक्ति साधन
सत्सं–अभ्यास	श्रद्धा	संतों का संग–प्रेमाभक्ति
विवेक–समाधान	विश्वास	विचार
वैराग्य, उपराम		विरति (वैराग्य)
शम–दम, तितिक्षा	मनैन्द्रियजीत	दम, शील, सन्तोष
मुमुक्षता–तृष्णा का अभाव,		मोक्ष की प्रबल इच्छा, शरणागति
श्रवण–अध्यात्म स्वाध्याय		गुरु–भक्ति, समर्पित भाव
मनन– आत्म चिन्तन		सुमिरण–भजन, तप
निदिध्यासन–निश्चयात्मक		ईश्वरमय द्रष्टि – सन्तों को अधिक
साक्षात्कार–एकाकार	–लय सृष्टि	स्वयं तत्व का ज्ञान।

समीक्षा–इन्दव छन्द

भौतिक पदार्थ जड़ सबै कछु, नाहि अध्यात्म काज सुधारे।
छिन परिच्छिन्न क्लेश भरे सब, उत्पति प्राप्त विनास विदारे॥
मूल्य घटक अनित्य है नाशक, न्यून विशेष उपादान सहारे।
'रामप्रकाश' नहीं परमार्थ साधक, बन्धन रूप हर्ष–शोक महारे॥5॥

स्वयं प्रकाश है आतम चेतन, पूरण आप परमानन्द प्यारा।
ता सम नाहि पदार्थ कोईक, द्रश्य श्राव्य जग माहि पुकारा॥
अध्यात्म चिन्तक सो धनवान है, पूरण चेतन घनानन्द धारा।
'रामप्रकाश' है सच्चिदानन्द पूरण, सो घन आप अनूपम सारा॥6॥

स्वार्थ को त्याग नर वर, परमार्थ पद में लाग जा भाई।
सन्त सदा उपदेश बतावत, श्रवण कर रंच विवेक ले आई॥
साधन चार को सार हृदय बिच, नर तन सफल करो भल धाई।
'रामप्रकाश' यों सन्त लखावत, जन्म रु मरण को मूल मिटाई॥7॥

लोह कटारी ते भौतिक युद्ध है, दैहिक शत्रु पर घात लगाई।
ज्ञान कटारी ते आन्तरिक युद्ध हो, अन्तस्थ शत्रु मोहादि हराई॥
मन माने कर धार पुरुषार्थ, खाय कटारी करो युद्ध जाई।
'रामप्रकाश' वृथा नर जीवन, खाय कटारी मरो क्यों ना भाई॥8॥

लोक रु देव कथा कह रीझत, सांग बनावत लोक रिझाई।
कृष्ण लीला रु राम लीला रच, ख्याल नाना बनावत भाई॥
निर्गुण ब्रह्म को प्रपंच बांध के, नकल करे बहु सांग बनाई।
'रामप्रकाश' यो असल त्याग के, नकल पूजत नर्क सिद्धाई॥9॥

अज्ञानी लोग राधा–कृष्ण की रासलीला का विहार प्रेम गाथा गा रहे है, यह राजसी भाव सो लोग रिझावन, प्रेम कथा धनोपार्जन अर्थ–साधना के लिये करते है। **क**= पूर्व की व्यतीत गाथा, भूतकाल का व्यतीत उदाहरण। **था**=ऐसा हुआ था–**कथा** को कहते है। यह सब मन का हुलास, सगुण–सराहना, शृंगार रस की महिमा को वास्तविक ब्याज रूप परमात्मा की निन्दा करके मन में प्रसन्नता मान रहे है, **मूर्खों की महिमा भी निन्दा का द्योतक है,** यही मूर्खता है।

आज कोई किसी के माता–पिता के विवाह–विरह लीला में प्रेम गाथा कहते है तो सब को बुरा लगता है , परन्तु जगत्पिता जगनियन्ता, प्रकृति संचालक, निष्कलंक, अज्ञान हर्ता अथवा महापुरुष की मूर्तिमान से रासलीला की प्रेमगाथा गाते–बनाते किसी सनातनी धर्म ध्वजी को शर्म नहीं आती है। मूर्खों की स्तूति भी निन्दा के समान ब्याज स्तुति के समान कही जाय तो अतिश्योक्ति अत्युक्ति ही होगी ?

इन्दव छन्द

देवकथा अवतारक समीक्षा सब, महापुरुष जीवन वृत बतावे।
नाचत गावत साज बनावत, रासलीला कह लोक रिझावे॥
जो ईश्वर अविनासी एक रस, ताहि की झूठ लीला दरसावे।
'रामप्रकाश' धन लाभ हितार्थ, सांग बनावत लाज न आवे॥10॥

सांग बनावत नाचत राचत, बैठ व्यासासन लोक भ्रमावे।
जीवन सुधार भक्ति सतसंगत, व्यशन दूर करे न करावे॥
छेल छबीली पान चबावत, परम पिता के रास दिखावे।
'रामप्रकाश' धन लाभ हितार्थ, सांग रचावत लाज न आवे॥11॥

गोपी लीला रू राधा की विरहिण, वृजनारी संग रास दिखावे।
नाना भेष हरिश्चन्द मेलागिरी, ऐसे ही कृष्ण–गोपी सरसावे॥
योगी कृष्ण की गीता को छोड़के, प्रेमलीला कह लोक रिझावे।
'रामप्रकाश' धन लाभ हितार्थ, नकल करे ताहि लाज न आवे॥12॥

मनोहर छन्द

अज अविनासी एक, अखण्ड अपार प्रभु ।
ताको कहत झूठे, हाथ के बनाय के ।।
जगत के मात तात, ताकी तो उघारे बात ।
केते होय नाचे कृष्ण–गोपी बन आय के ।।
अजन्मा को जन्म जाने, वेद की ना बात माने ।
ताते जात काल ही के, मुख में चबाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।7।।

भावार्थ–परमानन्द स्वरूप सत चेतन अविनासी, अजन्मा एक अखण्ड अपार प्रभुत्व धारक सर्वेश्वर्य सम्पन्न निर्गुण–निराकार को पत्थर, ताम्बा, पीतल आदि भौतिक धातुमय कल्पित मूर्ति रूप से मानसिकता के भाव से हाथो द्वारा घड़ाई–बनाई प्रतिष्ठित करके बतीसोपचार–शोड्षोचार के पूजन से भ्रम में भ्रमित हो रहे है।

जिस प्रभु की हम सदैव प्रार्थना करते है –

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम देव देवः ।।

ऐसे जीवन के सर्वस्व आधार को एक मूर्तिमान मान कर उनके समान वेषभूषा का सांग बना कर कल्पना करना यह पूरा दम्भ (बनाया हुआ दिखावे की नकल) मात्र से हंसी के पात्र हो रहे है।

जो निगुण–निराकार सर्व व्याप्त अधिष्ठान परब्रह्म है, उनको तत्व रूप भौतिक अपर ब्रह्म को भी कल्पना में ढाल देने वाले पाप ही करते है, इसलिये ऐसे लोगों को काल चबेना से बचाना दुष्कर ही नहीं असंभव है।

ऐसे समर्थ हितकारी प्रभु के लिये उघारी लोकलीला द्रश्य–श्राव्य में व्यवहत करते हैं। कृष्ण–गोपी का स्वांग रचाकर अपनी पूजा–प्रतिठा से धनोपार्जन के कार्य करते हैं, जो सर्वेश्वर अजन्मा, अजर, अमर है, उनकी जन्म–लीला, रास–नृत्य कथन दर्शन बनाते हैं। वेद–शास्त्र जिसको नेति नेति (न–इति, न–इति) बखान करते है, उसे नहीं मानते, अपितु जन्म–जात मूर्तिमान लीला रास बनाते–गाते है। इसलिये ऐसे कल्पित नाम–रूप चरित्र

गाते और नकल करते हैं, वही काल कवलित होते है।

ज्ञान की गर्जन करने वाले पद्य रचयिता संत हरिसिंह सत्य निष्ठा पूर्वक चेतावनी के शब्दों में ललकारते हुए कथन करते हैं। हे मूर्ख ! झूठे, नाशवान, असत्य शरीर में अध्यस्त रत अध्यास कर बैठा है। अपने स्वरूप को नहीं जान रहा है, ईश्वर भक्ति सहित जीवन की ज्ञान कटारी की घात खाकर मरता क्यों नहीं है ?

जो देश (राष्ट्र) हेतु, मानव धर्म रक्षा के लिये लोह की कटारी खाकर मर गया तो स्वर्ग, यथा मान, प्रतीष्ठा राज्य सुख मिलता है और ज्ञान की कटारी से अन्तस्थ अज्ञान जीवन कामादि विकार समूह के नाश से मरण हो गया तो जीवन्मुक्ति के पांच प्रयोजन (फल) की प्राप्ति से सर्व संशय-भ्रम मय प्रपंच की कारण सहित कार्य निवृति का परमानन्द प्राप्त हो जायेगा।

समीक्षा-इन्दव छन्द

ताप समूह की दुःख निवृति हो, प्राप्त परमानन्द सदाई।
ज्ञान रक्षा को उपाय सदा कर, तप के तेज बढाय सवाई॥
विसंवादाभाव से संशय सर्व से, देह अभ्यास समूल मिटाई।
'रामप्रकाश' मर ज्ञान कटारि से, आवागमन को मूल विलाई॥13॥

वेद यो कहत है ईश्वर व्यापक, प्रारब्ध ते पावत जीव सदाई।
आप ही बनाय के थापत आपहि, मूरख मांगत आप ही जाई॥
भोग लगावत आप ही खावत, सुगन्ध धूप सो आप ही पाई।
'रामप्रकाश' है ज्ञानी अचंभित, चेतन छोड़ के जड़ को ध्याई॥14॥

मनोहर छन्द

आप होय जीव पापी, व्यभिचारी भक्ति करे।
कहे प्रभु पाऊँगो मैं, वैकुण्ठ हूं जाय के॥
कोऊ तो कहत मोक्ष, मोक्ष हूं शिला के मांहि।
कोऊ तो कहत गौऊ, लोक महुं धाय के॥
देश काल वस्तु परि-च्छेद से रहित प्रभु।
ताको कहै एक देशी, मन में फुलाय के॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के॥8॥

शब्दार्थ – अध्यास=मिथ्या ज्ञान, झूठा ममत्व बोध, विपर्य्य ज्ञान, कुछ का कुछ दिखाई देना, धोखा, माया, भ्रम, सत्य में असत्य और असत्य में सत्य का विपरीत भाव होना।

भावार्थ–हे मानव ! तू अपने आप को अज्ञान वश मिथ्यात्व बोध वश जीव मान कर पापी होकर परिवर्तित एवं कल्पित, ढोंग–दम्भ रचित पाखण्ड से व्यभिचारी (चंचल, अस्थिर, नियम, विरुद्ध, दुश्चरित्र पूर्ण) भक्ति करते हुए मोक्ष की मानन्दी कर बैठा है। कई कहते हैं मैं वैकुण्ठ लोक, स्वर्ग लोक, में जाकर मोक्ष प्राप्ति करूंगा।

कई जन मोक्षशिला, कई नाना इष्ट से अपने देवलोक तथा कई गौ लोक या साकेत–ब्रह्मलोक आदि की धारणा से मोक्ष मान के भ्रम पालते है।

जो परब्रह्म देश, काल, वस्तु–धर्म परिच्छेद रहित, वस्तु विशेष से भिन्न, खण्ड–विभाजन, बंटवारा करने से परे, अवधि सीमा, हद–निर्णय, निश्चय द्रष्ट–मुष्ट से परे, उपचार माप–दण्ड परिभाषा से रहित है। उस परम तत्व को एकदेशी–सीमित दायरे में मानव लीला के प्रपंच में बन्धा हुआ। दिखा कर मन में प्रफुल्लित हो रहा है।

निर्भिक गर्जना करते कवि हरिसिंह कथन करते है कि – हे मानव ! नाशवान देह में अध्यस्त–अध्यास करके मोद मानता है। ऐसे मन–मानन्दी जीवन से तो अच्छा है कि **ज्ञान कटारी** के आघात से मर क्यों नहीं जाता है ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

हाथ बना कर भौतिक रूप से, धातु पत्थर मूर्ति में माने।
आप बनावत और घड़ावत, मूल्य चुकावत लाय के ठाने॥
आप हि विनय स्तुति कारक, जोड़त हाथ सो ईश्वर जाने।
'रामप्रकाश' उन से ही मांगत, ऋद्धि सिद्धि सुख सम्पत्ति आने॥15॥

कैसी है भूल भ्रम अज्ञान की, भूल के मानव भव डूबाना।
जड़ धातू भय पत्थर थाप के, जोड़त हाथ रू मूरति माना॥
सम्पति पूत रिद्धि सब मांगत, प्रारब्ध कर्म से आवत पाना।
"रामप्रकाश" भयो मानव मूरख, जड़ ते मांगत चेतन स्याना॥15॥

मनोहर छन्द

करि सतसंग सुधा–रस क्यों ना पीवे तूँ तो।
होत है बहुत राजी, विषय लपटाय के॥

बाँधे टेडी पाग पेरे, धोती सो किनारी दार।
अंग पर ओढ लेत, दुपटो रंगाय के।।
बोले मीठी बात कहै, बहुत सिहानो सत–।
संग में ना आवे कभी, लोक में लजाय के।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के।।9।।

भावार्थ–पापहारी वक्तव्य को सिंह गर्जन से कवि हरिसिंहजी कथन करते है। हे मानव ! तू भौतिकवाद की चाल–ढाल से विषयों में लम्पट हो रहा है। अतः इस झूठी तड़क भड़क को त्याग कर सत्य स्वरूप परमात्मा के परम तत्व में रंगे संशय रहित तत्वदर्शी सन्तों का सत संग करके ज्ञानामृत क्यों नहीं पीता ?

संसार की रहन में किनारीदार धोती पहन कर गर्वोन्मत होता, टेडी पाग (पगड़ी) झुकाता तथा दर्पण में देखता है और शरीर पर कई मन माने काषाय रंग या नाना रंगीले भड़काऊ रंग से दुपट्टा रंगवा कर गले में डाल कर ओढ लेता है या पहन लेता है।

जन समुदाय के लोगों से मीठी मुस्कान भरी बातें करते हुए बड़े गर्व से प्रशंसित होता है। लोक लज्जा से लज्जित होता कभी ज्ञानी तत्वदर्शी सन्तों की सतसंग में नहीं जाता है। नित्य प्रति गृहस्थों के यहाँ सतसंग–प्रतिष्ठा जमाता हुआ अपने मदोन्मत गर्वित जीवन में मस्त धनार्जन का भिक्षु बनता रहता है।

इस प्रकार का मिथ्या देहाभिमान पूर्क जीवन भ्रम में देहाध्यासी हो रहा है। ऐसे लोक अनुशंसा के जीवित रहने से अच्छा है **उत्तम ज्ञान कटारी** की पेट में आघात खाकर मरता क्यों नहीं ?

समीक्षा–सवैया छन्द

मानव क्यों ना करे सत संगत, सन्त विद्वान का सान्निध्य ठाने।
भ्रम मिटाय संशय सब जावत, आप को रूप अनूप पिछाने।।
चेतन आप अखण्ड अनन्त है, जानत मानत पाप विलाने।
'रामप्रकाश' सतगुरु शरणागत, आवागमन को मूल मिटाने।।17।।

साधनहीन श्रुति रट ज्ञानी हो, ग्रहस्थ कीच रह्यो लपटाई।
बाताँ में ही ब्रह्मज्ञानी बण्यो रह, गर्व के रूप रह्यो भ्रमाई।।
लापर चापर बोलत श्रुति सो, परधन पाय के मोद मनाई।
''रामप्रकाश'' परधन की बात से, तेरी नर भूख कदापि नसाई।।18।।

मुर्ख मोद मनावत मानव, पहने पट रंग पाग संवारे ।
तेल फुलेल लगावत अंग में, तीर्थ व्रत में सो उलझारे ॥
नाना कर्म रू भ्रम वासना, पाखण्ड दम्भ में आयु बिभारे ।
'रामप्रकाश' नहीं सत संग भावत, अन्त समय यमदूत ही मारे ॥19॥

धर्म परमार्थ काज होवत, घर घर मांगत लाज ना आवे ।
माल उडावत मौद मनावत, पट रंगे गल बीच लगावै ॥
दम्भ के भेष बनावत साधु के, नेता रू पंच के साथ रहावे ।
'रामप्रकाश' मन बात बनाकर, लोक रिझाकर मान बढ़ावे ॥20॥

मात पिता तज बाँधव कुल को, सुत सुता तज नारि को सारे ।
कायर काम बिगारत आलस, दम्भ के सांग उपावत भारे ॥
भेष बनावत रंग के आप हि, नाम उपाधि मन मानद धारे ।
'रामप्रकाश' कछु लाज न आवत, मौद बढा मन गर्व घनारे ॥21॥

मनोहर छन्द

ज्ञान की कटारि कस, बाँध तेरी कमर से ।
जाय सतगुरु पास, लीजिये सजाय के ॥
शुद्ध हि विचार करि, मार काम क्रोधादि को ।
म्यान से निकाल लेऊ, हाथ में हलाय के ॥
करि याकी चोट आर–पार हि निकासी तेरो ।
जान तूं स्वरूप जीव–भाव को मिटाय के ॥
कहे 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ॥10॥

रूपार्थ–शब्दार्थ – ज्ञान कटारी = शब्द शमसेर, वैराग्य = आगामी वासना का त्याग, त्याग = प्राप्त सामग्री जीवन में त्याग,

भावार्थ– विवेक = श्रद्धा, शास्त्र–समाधान, प्रमयगत एवं प्रमाणगत संशय रहित, सतसंग–अभ्यास । वैराग्य=शम–मन को विषयों से निरोध करना, दम–शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्धादि विषयों से इन्द्रियों को संयम रखना, मुमुक्षू भाव को लेकर अर्थात् कमर में कस कर दृढ़ता पूर्वक बाँध (धारण) कर के अज्ञान अन्धकार निवारक तत्वदर्शी ज्ञान

सतगुरु के शरणागत (सम्मुख–सानिध्य) जाकर प्रणिपात श्रद्धा भाव से श्रवण मनन तथा निदिध्यासन द्वारा सजित कर लें।

इस शास्त्र विधि से अपने शुद्ध बोद्धिक विचारों द्वारा अन्तेर्वेरी काम (वासना), क्रोध– परिवाँर, लोभ सहित अज्ञान जनित अविद्या मूल बहिरंग एंव अन्तरंग शत्रुओं का छेदन करो अर्थात् देहागार (म्यान) से निकाल ले और विवेक, वैराग्य, शमादिषट् सम्पत्ति) मुमुक्षा (चार अंगुलियों) के साथ दृढ निश्चय अंगुष्ठ से मजबूत (दृढ़) धारणा के हाथ से सतगुरु सान्निध्य हाथ हिला (जोड़) कर अन्तस्थ शत्रु संहार कर ले।

इस प्रकार दुष्कर दुराग्रहता परक पांचों शत्रुओं पर प्रहार कर आर=भौतिक नाम–रूप के षट् भ्रम के व्यवहार, पार=अन्तरंग, स्वयं रचित संचित कर्म (अनन्त जन्मों का संस्कारित, क्रियामाण (आगामी) कर्म, वासना (तीन जीव रचित कृतिम) में तथा प्राकृतिक ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, अज्ञान एवं चिदाभास के पार=छेद करके इनके परे अधिष्ठान साक्षी स्वयं स्वरूप की निश्चयात्मक वृति से जीवत्व भाव मिवृत्त करके लक्ष्यार्थ तत्व ज्ञान को दृढ़ करो।

कवि सम्बोधन करते हैं – हे मूर्ख मानव ! मिथ्या शरीर (देह=दहन योग्य) में ममत्व भरे अध्यास से अध्यस्त हो रहा है। इस से अच्छा है कि लोहे की या उत्तम ज्ञान की जो चाहे कटारी पेट में मार कर मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा – क्रोध परिवार–इन्दव छन्द

जिद हठी वह लाड़ली बहन है, वासना मात पिता भय माना।
पत्नि हिंसा अंहकार ज्येष्ठ है, निंदा सुता लोभानुज जाना॥
विरोध पुत्र रू ईर्षा बहु नाकट, घृणा पोती उपेक्षा मां ठाना।
दादा है द्वैष रू मोह मित्र कह, रामप्रकाश ये क्रोध खानदाना॥22॥

विवेक वैराग्य शमादिक मुमुक्षा, चार हूं आंगुल दृढ सुजाना।
मुमुक्षु अंगुष्ठ दृढ़ता पूर्वक, ज्ञान कटार मुष्ट गह जाना॥
श्रवण मनन और निदिध्यासन, वार के आर रू पार द्रढाना।
"रामप्रकाश" यों ज्ञान कटारी ले, मार शत्रु सब अन्तर ठाना॥23॥

मनोहर छन्द

दुर्लभ ते देह धरी, कहाँ ते कमाई करी।
भूलो निजानन्द हरी, देह बुद्धि लाय के॥

यन्त्र मन्त्र साधे भूत–प्रेत हि को बान्धे तासे ।
काया कर्म बान्धे देहा–भाव दे जलाय के ।।
वेर वेर नाही नर, देह तोको आवे ऐसो ।
मुक्ति को दुवार देत, धुलि में मिलाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अभ्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।11।।

भावार्थ–रचनाकार सम्बोधन देते है –

हे मानव ! ऐसा दुर्लभ नर तन साधन धाम बड़े पूण्य प्रताप से प्राप्त किया जाता है, जन्म लेकर यहां क्या कमाया ? क्या अध्यात्म साधन किया ? कितना परोपकार किया ? केवल मात्र भौतिक शरीर के भागों में देह बुद्धि से तूला–मूला अविद्या में उलझा रहा, आत्मानुभूति निजानन्द को भूल गया ? जो पाप हर्ता हरि (परमात्मा) है, उसे भी भुला दिया ?

सांसारिक प्रपंच में उलझ कर यन्त्र,मन्त्र, तन्त्र साधना से भूत–प्रेतों को बाँधने भगाने तथा भौतिकी प्रकृति के देव, लोक देवता, देवी–देव भैरवादिक आन उपासना से वशीकरणादि षट् कर्म क्रियाओं में लगा कर्मजाल में बन्धायमान हो गया । इस प्रकार देहाध्यास से तीन ताप की ज्वाला में हमेशा जन्मान्तर से जलता रहा और जलता ही रहेगा ।

वार–वार ऐसा सुदुर्लभ–नरदेह मिलने वाला नहीं हे –
दुलर्भ इस संसार में, सन्तों का दीदार ।
***मिलियां पीछे सन्तदास, मिटता सभी विकार।।** सन्त. अ.वि. 18/5*

नर तन में सतसंग दुलभ, दुलभ, ब्रह्मविद गुरु खास ।
मानव बनना ज्ञान वित, दुर्लभ राम प्रकाश ।।24।।

वार वार ऐसा सुदुर्लभ नर देह मिलने वाला नहीं है । यह शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, साधक–साधन धाम अर्थात् **''साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाय ना जेहि परलोक संवारा।'' स्वर्ग नर्क अपवर्ग निशेनी, भक्ति ज्ञान विरति शुभ देनी।** ऐसे अमूल्य मानव धर्म रत्न देह को मट्टी (रेत) में मिला दिया ।

ऐसे मिथ्या देहाध्यास में फंसने से तो अच्छा है उत्तम ज्ञान कटारी की मार से भौतिक अस्तित्व हीन हो कर मरता क्यों नहीं ?

इस प्रकार के प्रपंची से जच्छा है लोह की कटारी से आत्मघात कर ले, किन्तु आत्म घात (हत्या) से नारकीय कुण्ड भुक्तना होगा? राष्ट्रहित-परोपकार कार्य में लोह कटारी से मर जाने से स्वर्गादि सुख का पुनर्जन्म प्राप्त किया जायेगा और यदि ब्रह्मज्ञान आत्मबोध की शब्द कटारी सतगुरु द्वारा आघात खाकर मर जाय तो अत्युतम मोक्ष प्राप्ति एवं सर्वस्व बन्धन निवृत्ति क्यों नहीं कर लेता ?

समीक्षा-सवैया छन्द

दुर्लभ साधन धाम में कहा ? कियो जग आय के देह कमायो।
लोक रिझा कर मान बढाय के, कर्म रू भ्रम को भेष बनायो॥
गर्व कियो मन मौद बढा कर, हरि नाम जप्यो नही बोध बढायो।
'रामप्रकाश' या मुक्ति के द्वार को, खोय दिया नर देह गमायो॥25॥

लोक परलोक की वासना बान्ध के, कर्म, रु भ्रम को जाल बिछायो।
जग के जीव फँसाय के जाल में, देव रू दानव भूत जगायो॥
नाना उपाय से कपट कमावत, तीर्थ व्रत में मन लुभायो।
'रामप्रकाश' नहीं पायो परमार्थ, अध्यात्म बोध को नाहि उपायो॥26॥

गोपिका गीत रू रास लीला कर, लोक रिझावत मोद बढाई।
सगुन वेष रू माहेरो गावत, सांग बनावत नेह लगाई।
कामुकता वश रजोगुण साधत, अध्यात्म ज्ञान को भुल गयो भाई।
'रामप्रकाश' नर देह वृथा कर, ज्ञान कटारी को खाय ले आई॥27॥

मनोहर छन्द

जप रे अजपा जाप, सोई है तू आपो आप।
निश्चय करि मान ध्यान, बैठ जा लगाय के॥
देह बुद्धि टार रूप, आप को सम्भारि काम।
क्रोध लोभ मोह याको, दीजिये भगाय के॥
शुद्ध तु स्वयं प्रकाश, छोड़ दे बिगानी आस।
होत क्यों हैरान मूढ, मिथ्या में गंठाय के॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के॥12॥

भावार्थ–सन्त सम्बोधन देते है –

हे मानव ! सुरत–शब्द, मन–प्राण को साधकर द्रढ आसन से समता भाव जाग्रति पूर्वक अजपा जप की सिद्धि करके निर्गुणोपासना से स्वयंमात्म तत्व को निश्चय कर , वही अपना चेतन स्वरूप है। सोहमस्मि इति वृति अखण्डा 'अहंब्रह्मस्मि' महावाक्य का ''तत्वमशि ब्रह्म'' रहस्य से आत्मानुभव कर ले।

अपने आतम तत्व की अपरोक्षानुभूति स्मृति धारण कर देह में मिथ्यात्व बुद्धि की वृत्ति का त्याग कर दे। अज्ञान जनित पंच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) का नास–भगा (स्वभाव बदल) कर नित्य मुक्तमय निर्भय हो जा।

तू स्वयं शुद्धस्ववरूप स्वयं प्रकाशी परमतत्व है। अन्यान्य देवी–देव की मान्यता है, वह बिरानी अन्योपासना (कामना) है, उस भ्रम का आमूल चूल त्याग कर दे।

हे मूर्ख ! मिथ्या (नाशवान) देह (शरीर) के देहाध्यास में क्यों उलझ रहा है ? ऐसे जीवन से तो पेट (अन्तर्पट) में ज्ञान कटारी खा कर मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

मोह माया रू काट विकार सो, तन मन वाच को शुद्ध करो रे।
देह अध्यास को दूर करो नर, सतसंग सतगुरु संग मरो रे॥
अन्तस्थ दोष विकार हटा मन, परमार्थ साधन संग परो रे।
'रामप्रकाश' जो मोक्ष को चाहत, अध्यात्म चिंतन चित धरो रे॥28॥

जप ले आप को सोहम् सोहम्, आपनो रूप संभाल सदा रे।
तीन सो देह–अवस्था ते परे वह, चेतन शुद्ध को पाय सदा रे।
सतगुरु ज्ञानी की शरण में जायके, सतसंग मे चित धार सदारे।
''रामप्रकाश'' पद पाय परमार्थ, मोक्ष परमानन्द चित सदा रे॥29॥

सतगुरु शब्द को श्रवण द्वारते, ह्रदय ठीक ठहराय ले भाई।
मुख ते सुमिरण कण्ठ रू हौंठ ते, गिलगिली ह्रदय माहि लगाई॥
नाभि की साधना राम प्रभावित, जाप अजपा चित माहि समाई।
'रामप्रकाश' कर शम दम सतसंग, अन्तवेरी मार ले भाई॥30॥

मनोहर छन्द

शुद्ध हि विचार सोई, फौलाद कटारी करि।
गुरु जु लोहार पास, लीजिए घड़ाय के।

घड़ी भले घाट याको, अग्नि माहि ताती करि।
प्रेम रूपी पानी वाको, दीजिये चढ़ाय के ।।
नाम रूप रहित सो, कटारी दुरूस्त करि।
शुद्ध बुद्धि म्यान तामे, राखिये द्रढाय के।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के।।13।।

शब्दार्थ – घाट=नमूनेदार, पक्की धार से, नये तोर से घड़ाई।

अग्नि=वैराग्य, उपराम और तितिक्षा के अध्यात्म साधना के ताप से।

ताती=गर्म, उष्ण, तपा कर। **पानी**= पकी, तिक्षणता की धार से ठण्डी करना।

कटारी=ज्ञान की दुधारी छुरी। **म्यान**=कोष, ढकन, आवरण।

दुरुस=दुरूस्त, शुद्ध, सही, सत्य अखण्डित, सम्पूर्ण, साबित, कठोर, सख्त।

भावार्थ–पद्यात्मक काव्य द्वारा द्रष्टान्त से समझाते हुए कवि दरसाते है –

द्रष्टान्त–जैसे पक्के फौलादी लोहे से लोहार के पास जाकर कटारी (छोटा शस्त्र) घड़ाई करवाते हैं। लोहार लोहे को तपा कर अग्नि के समान लाल (पिघलने) होने पर ऐरण पर रख कर घन (मोटा हथोड़ा) की गहरी चोट (मार) कर ठोस घड़ाई करके कटारी को जल में ठण्डी धार (पानी) देकर तैयार करते है।

इस सम्बन्ध में कई लोकोक्तियां प्रसिद्ध है –

लोहा=काले रंग की खनिज धातु, जिस से बर्तन, मशीने, और अस्त्र–शस्त्र हथियार बनते है।

अस्त्र=दूर से मार करने वाले भाला, बलम, तोप, बन्दूक आदि।

शस्त्र=नजदीकी मार करने वाले तलवार, छुरी, चाकू, कटारी आदि।

लोहार=लोहे की घड़ाई का काम करने वाला व्यक्ति, जो लोहे की परख, तपाना, घड़ना, शस्त्रास्त्र पर तीव्र धार (तीखी–तेज) पानी देकर तैयार करता है, सिकलीगर लोहार, लोहा कच्चा और पक्का दो तरह का होता है।

कच्चा लोहा=जिस से कई अन्यान्य वस्तुए बनाई जाती है। जो अपरिष्कृत लोहा, (इस्पात) होता है।

पक्का लोहा=परिष्कृत शुद्धता पूर्वक पिटवा कर इस्पात बनाया जाता है, उसे फौलाद या पक्का लोहा कहा जाता है।

खनिज पदार्थ=सोना, चांदी, तांबा, की भांति एक काला पदार्थ होता है, यह सब पृथ्वी से प्राप्त होते है। पत्थर की कुटाई, तपाई, गलाई करके बड़े परिश्रम–उपायों द्वारा

खनिज धातुएं प्राप्त की जाती है। यह पृथ्वी अनेक पदार्थों की जननी है।

सिद्धान्त= हे मानव ! अपने परम पुरुषार्थ हेतु सतसंग, स्वाध्याय साधना द्वारा मञ्जित शुद्ध पवित्र सात्विक विचार रूप फौलादी लोहे से मजबूत उत्तम ज्ञान कटारी के लिये तत्पज्ञ सतगुरु लोहार के शरणागति में जाकर घड़वा (तत्व निष्ठा कर) ले।

विवेक (श्रद्धा, विश्वास, समाधान के घाट) और वैराग्य (मन का संयम (शम), दम (इन्द्रियों को पंच विषयातीत) द्रश्य पदार्थों के मोह से उपराम तथा तितीक्षा (सर्दी, गर्मी, भूख प्यास के सहन शक्ति) की अग्नि पर तपा कर द्रढ मुमुक्षता के ऐरन पर श्रवण की युक्ति से पीटते हुए। अनुशासन–मर्यादा के घन से ज्ञान की कटारी उत्तम रीति से तैयार करवाने के लिये सतगुरु लोहार के पास जाओ, वे प्रेम मयी कृपा को पान (धार) से तैयार कर देंगे।

यह उत्तम ज्ञान कटारी नाम रूप के दोषों रहित द्रढ निश्चय से दुरूस्त (उचित) शुद्धता से सुधार कर विवेक मयी ब्रह्मविषयणी बुद्धि रूप म्यान (खडग कोष) में रखकर धारण कर ले।

हे बन्धु ! देहाध्यास के मिथ्यात्व बन्धन में बन्धा रहने से तो अन्तःकरण (पेट) में ज्ञान कटारी खा (मार) कर मरता क्यों नहीं ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

लोह की धार कटार के शस्त्र, मरे अनेक धरातल माही।
नेक परमार्थ कारन मौत से, खाय कटार मरे धर ताही।
स्वर्ग ताहि मिले वसुधा यथा, वारम्वार जन्मे जग आही।
'रामप्रकाश' मरे ज्ञान कटार से, आवागमन सदैव मिटाही ॥31॥

घनाक्षरी छन्द

करे चारों धाम सबै, तीरथ में घूम्यो अरू।
भयो है पवित्र गंगा, गोमती में नहाय के ।।
कीनो हठयोग तासे, जायगो क्या ? रोग मूढ।
इच्छा स्वर्गादि भोग, बैठो क्या कमाय के ।।
जासो तेरी जन्म अरू, मरण जु नहीं छूटे।
तू तो निजानन्द घन, उलट समाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।14।।

शब्दार्थ–अध्यास=मिथ्या, झूठा ज्ञान, कुछ का कुछ विपरीत दिखना, विपरीत दृष्टि, शुद्धता धोखा, भ्रम है, पर नहीं दिखाई दे। जैसे – रस्सी (रज्जु) में सर्प, भूदरार, जल, रेखा इत्यादि है नहीं पर भासमान (मन्द प्रकाश, द्रष्टि दोष एवं पूर्व संस्कार के कारण) होता हैं। ऐसे हि यह शरीर, परिवार इत्यादि दृष्टिगत संसार सब स्थिर नहीं है, सब कुछ परिवर्तनशील, नाशवान, अस्थिर, मिथ्या होते हुए भी अविद्या विहित भ्रम के कारण अध्यास में विपरीत ज्ञान भासमान हो रहा है।

भावार्थ–हे मानव ! तू चारों धाम (जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका, बद्रीनाथ) अथवा गंगा यमुना, सरस्वती, गोमती, नर्मदा, कावेरी इत्यादि अनेक तीर्थों में भ्रमण करते तीर्थाटन करके पवित्र होकर शारीरिक मेल धोने से पवित्रता मान ली, क्या ? इस बाहरी न्हाने–धोने से पूण्यात्मा हो गया ? ऐसे तो तीर्थ तट निवासी या जल जन्तु मच्छी, मेढक, मगरमच्छादि नित्य उसी तीर्थ–जल में रहनेवाले सभी पूण्यात्मा हो जाने चाहिये ?

यदि शराब की बोतल को सौ बार गंगाजल में डूबोई जाने पर क्या पवित्र हो जाती है ? ऐसे ही तुम्हारा तीर्थ–धाम का यात्रा स्नान शरीर के मेल धोने का हुआ ना ?

हठयोग आसन–प्राणायाम आदि कर्मयोग से क्या भव रोग युगानुभोग समूह शरीर (कारण सूक्ष्म) से आरोग्य हो जायगा ? जन्म–मरण रहित हो जायगा ? हाँ इच्छित कामना के अनुसार भूलोकादि सप्त स्वर्ग सुख भोग–उपभोग पुनरागमन के पायेगा तो क्या हुआ ?

जिस परम तत्व को साक्षात्–निष्ठा करने से जन्म–मरण (भवरोग–अविद्या व्याधि) की समूल मुक्ति हो तथा स्वयमात्म निजानन्द घन में उलट कर समाहित (जहाँ से आया वहीं पुनः उसी परम तत्व को प्राप्त) कर लें।

यदि ऐसा नहीं कर सके तो व्यर्थ ही नाशवान परिवर्तन शरीर के मिथ्यात्व देहाभिमान में जीवित रहने से अच्छा है कि ज्ञान की कटारी का अन्तः आघात करके (पुर्यष्ठ शरीर सहित) मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा–सवैया छन्द

सप्तपुरी चौ धाम किये सब, तीर्थ स्नान कियो भल पूरो।
यज्ञ योग रू यन्तर मन्तर ये, किये सब ही पर सतसंग दूरो।
ज्ञानी सतगुरु शरण गही नहीं तब, अध्यात्म साधन हो गयो चूरो।
'रामप्रकाश' लख्यो नहीं सत चित, कूट रह्यो जग झूठ को तूरो ॥32॥

लखो निजानन्द सतगुरु के ढिग, साधन धार के मुमुक्षू सारे।
अपने रूप में उलट समाय के, जन्म रू मरण मिटाय दे प्यारे।

स्वर्गादिक इच्छा दूर करो सब, वासना अज्ञान की दूर निवारे।
'रामप्रकाश' यों सन्त पुकारत, भव के रोग को मूल उखारे ॥33॥

मनोहर छन्द

खीर नीर एक जान, दूध सो तो डारि दीनों ।
कियो ना विचार बैठो, पानी को जमाय के ॥
तासे तो तू सार क्या ? निकासेगो मथन करि ।
आप भलो और हि को, भूलावे भरमाय के ॥
मुख से कहत एक, आतमा सकल माँहि ।
देखि परदोष चित, तेरे में रमाय के ॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना ? मूढ ! तू, कटारी पेट खाय के ॥15॥

भावार्थ–ज्ञानी संत कथन करते है – हे अनजान ! बोधहीन मूर्ख !! अपने अज्ञान (अविवेक) से दूध और जल को एक जैसा मान कर सत्यार्थ, दूध को बाहर (भूलाकर) फेक दिया और पानी (भौतिक पदार्थों) को अध्यास का जामन (खटाई) देकर जमा बैठा है।

इस अनर्थ–जल के जमाव (देहाध्यास) के विवेक पूर्व मंथन (चिन्तन–बिलोवन) से क्या सार–वस्तु (नित्यानन्द) की प्राप्ति कर लेगा ? अरे भाई ! तुम अपने आप के स्वयमात्म तत्व को भूला बैठा है तथा संसारी लोगों को भी ग्रहदोष, भैरव–भूत, भोमियों की दिसा में, लोक कथा रसिकता इत्यादि के कर्मकाण्ड की नाना उपासना के तान्त्रिक प्रयोगों में उलझा कर भ्रमित कर रहा है।

कहने के वाक्यार्थ वाचाल में **'एकोब्रह्म द्वितीय नास्ति'** सब में एक परमात्मा है। परमात्मा सब में एक ही समाया हुआ है। किन्तु देहाध्यासी, भेषी–सन्त, पण्डित आदि निरन्तर जाति–पांति अश्यपृस्ता जन्म जातीय नाम–रूप के आश्रित पराये दोषों के चिन्तन में रम रहा है। इस झूठ भरे अशास्त्रीय एवं परमार्थ से विरूद्ध निन्दक रूप में डूब कर अविद्या का अवगाहन कर रहा है।

हे मूर्ख ! भौतिकता की मिथ्या देह में अध्यस्त होकर जी रहा है, इस से अच्छा है कि पेट (हृदय) में **ज्ञान कटारी** खा कर मर क्यों नहीं जाता ?

ऐसे निरर्थक–व्यर्थ जीवन के जीवित रहने से क्या लाभ ? अपितु **'पुनर्पि जननं पुनिर्प मरणम्'** से लोकालोक में भ्रमण कर के वार वार पुनरागमन के अतिरिक्त कोई

निहित लाभ नहीं है। इस से उपयुक्त यही है कि ज्ञान कटारी की अन्तर्घात करके मर क्यों नहीं जाता ? अर्थात क्यों नहीं मरता ?

समीक्षा–सवैया छन्द

सोना रू पीतल एक स्वरूप है , घर्षण तापन काट बतावे ।
तूँबा तरबूज सो एक ही दीखत, चाखत ही भ्रम भेद नसावे ।।
मिश्री फिटकरी एक हि स्वेत है, पारख ते सब मूल्य चुकावे ।
'रामप्रकाश' विवेक करो नर, खीर रू नीर को भेद लखावे ।।34।।

ऐसे ही नकल असल परीक्षित, रूप स्वरूप के भेद पिछानो ।
साधु–असाधु सो एक हि रूप में, वाणी रू खाणी के भेद को जानो ।।
बुग रू हंस सो उज्वल एक से, खान रू पान विवेक ते छानो ।
'रामप्रकाश' यों सत्य असत्य को, कर सतसंग में भेद लखानो ।।35।।

मुख ते वाचक होय रहयो कथ, ब्रह्म सर्वमिदम व्यापक सोई ।
व्यवहार शुद्धि बिन भौतिक वाद में, उलझ रह्यो खल जाति को जोई ।।
पान तम्बाकू के भक्ष अभक्ष में, अन्तर्मेल भर्‌यो नित रोई ।
'रामप्रकाश' नहीं ज्ञान गुरु बिन, ममत्व वासना में डूब रहोई ।।36।।

अर्थ उपार्जन स्वार्थ के हित, पूर्ण अध्यात्म पथ को त्यागी ।
सर्गुण लोक रिझावन के हित, पुराण कथा कथ ऊमर भागी ।।
निर्गुण उपासना त्याग करी सब, अहंता त्वंता में पूरण पागी ।
'रामप्रकाश' धिक सन्त भयो शठ, भेष पहन के रह्यो वह सागी ।।37।।

मनोहर छन्द

आप जो कहत बात, ज्ञान की बनाय करि ।
मन में रहत राजी, लोक में पूजाय के ।।
कहै बात और कोऊ, ज्ञान किसी को तब ।
जाने मेरो मान गयो, मरे यों मुरझाय के ।।
जाने एक मैं ही होता, द्वैत भाव छूटि जाय ।
अन्दर की आग तेरी, बैठ तूं बुझाय के ।।

कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के।।16।।

भावार्थ–हे मानव ! तथाकथित मनमुखी शास्त्ररहित पढे पाठ से वाचाल हो रहा है और यत्र तत्र बातें बना कर कहता रहे। अप्रमामणिक धौंस लगा कर जोर का दबाव देकर ज्ञान की बातें बनी बनाई, सुनी–सुनाई कहता रहता हैं, अज्ञानी भृत्या भृत्य लोगों द्वारा पूजा–प्रतिष्ठा पाता रहता है।

अन्य कोई कुछ बात कहता है – किसी को समझाते–बताते ज्ञान चर्चा कथन करते है, उन्हें देख कर अपना अपमान समझता है, द्वैष दृष्टि बढ़ाता है। अरे ! मेरे बैठे इन्होंने कुछ कह कर मेरा मान मर्दन कर दिया। ऐसा मान कर मन मुर्च्छित होकर चित में उदासी लाता है।

सदैव मानन्दी रही है कि सब जगह केवल मात्र अकेला मैं ही होता रहूं तो द्वैत भाव स्वतः छूटा रहे। इस तरह से अपने अन्तस्थ के जलते हृदय दाह (द्वैषाग्नि) को आश्वासन से बुझा बैठता है।

हे मुर्ख ! मिथ्या – नाशवान देह (दहन योग्य शरीर) में ममत्व भरा भ्रम (अध्यास) करके फूला रहता है, ऐसे जीवन से क्या ? अन्तर्हृदय में ज्ञान कटारी खाकर मरता क्यों नहीं ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

केश लुंचाय के जटा बढाय के, मूढ मुडाय के रहे उघारा।
भस्म रमावत भेष बनावत, ज्ञान सुनावत मौद मतारा।।
ओर को देखत द्वैष बढावत, मान गयो, मन मुर्च्छित प्यारा।
'रामप्रकाश' मन मुख ज्ञानी हो, फूल रह्यो मन में अहंकारा।।38।।

और को देख के मन मुरझित हो, रहे अकेल तो प्रसन्न प्यारा।
मनमुखि ज्ञान सुनावत है जन, भीड़ में प्रसन्न होवत भारा।।
सन्त गुरु गण देख दुःखी हो, रहे उदास ऐसा अहंकारा।।
'रामप्रकाश' मरे नहीं मूरख, ज्ञान कटारी की मार–प्रहारा।।39।।

मान ले मानले मूरख मानव, सन्त वचनामृत ध्यान लगाई।
जान ले जान ले आपनो आतम, साधन सार के गुरु मुख जाई।।
छानले छानले विचार ते साधन, बाहिर त्याग के अन्तर्ध्याई।
'रामप्रकाश' को ध्यान करो वर, परम परमानन्द शान्ति को पाई।।40।।

मनोहर छन्द

देह अभिमान कहा ? बिलोवे बैठो पानी बात ।
काहू की ना मानी तू तो, बोलत चगाय के ॥
आप को अधिक मान, और की तो हांसी करे ।
काहू से लड़त सोते, सांप को जगाय के ॥
बहुत कमायो धन, पेट में ना खायो पर ।
तिया को लुभायो कुल, बैठो है डुबाय के ।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू ? कटारी पेट खाय के ॥17॥

भावार्थ – हे मानव ! देह अभिमानी होकर अनात्मा–अनर्थ पानी को मंथन (समर्थन) कर के क्या पा लेगा ? विद्वानों की सत्य बात का उपदेश मानता नहीं। यदि कहीं कभी कोई शास्त्र विहित उद्‌घोष करे तो मन में रोषण पूर्ण चगा कर (खीझ के) बोलता है।

अपने आप को सर्वोपरि ज्ञानी समझदार मानता है और दूसरे विद्वान वक्ता की हांसी (उपहास) मखोल उडाता हैं। कभी किन्हीं समर्थ ज्ञानी से अखड–अड़ कर विवाद बढ़ाता, सोते सांप को जगाता अर्थात् अपने को संकट में डाल लेता है, झगड़ा–द्वैष उधारा खरीद लेता है।

हे कृपण ! जीवन में बहुत धन कमाया परन्तु कभी भर पेट में नहीं खाया, ना कोई परोपकार में लगाया अपितु परत्रिया–व्यभिचार में लुभायमान रहा और कुल लाज–मर्यादा डुबा (कलंकित) कर बैठा।

कृपण का लक्ष्मी के प्रति वाक्य –

"दाता घर जाती तो बहुत दुःख पाती अरू ।
मेरे घर आई तो, बधाई बाँट बावरी ॥
खाने दश खाने तह–खाने में छुपाय राखूं।
होय ना उदास मेरो, यही चित चावरी ॥
खाऊँ ना खवाऊँ मर–जाऊँ तो सिखाय जाऊँ ।
न्याति और पूतन को, आपना स्वभावरी ॥
दमड़ी न देऊँ कभी, स्वप्न में भिखारिन को ।
कृपण कहै लक्ष्मी से, बैठी गीत गावरी ॥3॥

रचयिता संत–कवि पद्य में कथन करत हैं – हे मुर्ख ! झूठे ही शरीर में देहाध्यास करके भ्रम में जी रहा है, ज्ञान की कटारी से अन्तर्घात (हृदयघात) से मरता क्यों नहीं ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

देह अभिमान को त्याग करो नर, मिथ्या अध्यास को दूर भगावो।
सतसंग साधन सतगुरु पावत, सन्त सान्निध्य में श्रद्धा लावो।
बैठ एकान्त करो चित्त चिन्तन, अन्तर्द्वन्द को दूर हटावो।
'रामप्रकाश' यां परम पुरुषार्थ, सहज हि आनन्द रूप समावो ॥41॥

हृदय की बम्बी मांहि यों वर, गर्व को सांप धस्यो उर आई।
काम रू मोह के दॉन्त लगे विष, क्रोध रू लोभ को जहर उपाई॥
जीवन धन है प्राण अमूल्य वो, जहर चढयो मर नर्क सिद्धाई।
'रामप्रकाश' सतगुरु गारूड़ी ते, प्रणव जप ले जहर मिटाई ॥42॥

कुछ समय हित जीवन लीज पे, मिला इजारा कमावन हेतू।
मत रजिस्ट्री के चक्कर में धँस, हक मालिकाना वृथा है सेत॥
वृथा में गर्व रह्यो आपनो कर, भ्रम में भ्रमित खोवत खेतू।
'रामप्रकाश' यों सन्त चेतावत, नाम जपो भव पार को सेतू ॥43॥

मनोहर छन्द

बजावे मृदंग ताल, खासा गावे आप ख्याल।
रहे आठोयाम रंग, राग में भिजाय के ॥
आप की सराहे बात, और की ना भावे देखो।
आप को अधिक मान, मूँछ मुरड़ाय के ॥
हरि के ना गावे गुण, विषै बात भावे मुख।
ज्ञान की तो बात सुन, ऊठत खिजाय के।
कहै 'हरिसिंह' वृथा, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू ? कटारी पेट खाय के ॥18॥

भावार्थ–हे मानव ! मुर्ख जन ताल–पखावज (चंग–ढोल आदि) बजाते और मन मौज के ख्याली खासा (अश्लील–गन्दे) गीत गाते है। ऐसे आठों पहर सांसारिक इश्क रंग–राग में भीगे ही रहता है।

अपनी गौरव गाथा (स्वगर्व मण्डन) गाता सराहना करता हुआ दूसरों की कही चर्चा–व्याख्या अच्छी नहीं लगती। डाढी–मूँछ (घुटम घुट या जुटम जुट) में गर्वित (अभिमान) होकर मूंछ पर मुरड़ाटी (मसोस) लगाता है।

कई जन मूँछ–डाढी कटवा कर बड़ी जटा बढाये रहते है, कई भैषी डाढी–सिर को मुड़ा कर मूँछे बढाये रहते है। सांसारिक भेष में त्याग का सांग दिखाते है।

पाप हर्ता हरि (परमार्थ तत्व) के कल्याणकारी गुणानुवाद (समानता का संगीत) नहीं गाता है अपितु मुख सांसारिक भोगों से रंगा विषयों की बातें करता है और प्रसन्न हो रहा है। वह कभी–कभी अध्यात्म चर्चा श्रवण करके खिज उठता है।

अरे इस मिथ्या जीवन से व्यर्थ है, मरता क्यों नहीं है ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

अपने मन की बात बखानत, और की बात सो नाहीं सुहावे।
रंग राग में भव के माग में, लाग रह्यो मन मौद बढावे ॥
सांच की शास्त्र साख सुने तब, खीजत भाजत क्रोध कमावे।
'रामप्रकाश' वृथा नर देह में, ज्ञान कटार मरे पद पावे ॥44॥

मनोहर छन्द

हंस ही कहावे अना, लक्षण तो काग ही के।
बोलत गुमान भरि, मुख मुस्काय के ॥
हंस सो तो मोती चुगे, मांस को खावत काग।
बैठे छोटे देश पर, फिर हि फिराय के ॥
ऐसे खल लोक सोई, सार हि को त्याग करि।
वस्तु जो असार ताको, राखत गृहाय के ॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।19॥

भावार्थ–हे मानव ! कई अधकचरे आडम्बरी–भेषीजन शराब, अफीम, गांजा, चाय–चिलम, तम्बाखू को खाने पीने के प्रयोग में लेते है अर्थात् एक या कई व्यशनों में रहते रहते कोए के समान कलंकित लक्षणों में रहते मांस–मदिरा का उपयोग करते है। वे अपने आप को हंस के समान उज्वल सन्त–सिद्ध साधक मानते है, बड़े गर्व से बातों में मुस्कराते मधुरता से आचरित होते है, जिन से जन साधारण भोले भाले अज्ञानी लोग

प्रभावित होते है।

मानसिंह संसार मैं, हंस स्वरूपी संत।
इन हंसों के भेष में, बुगला फिरे अनंत ॥4॥

ऐसे धूर्त भेषधारी यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, राखी–डोरे से मीठी चिकनी चुपड़ी बातों या अनेक उपायों से अर्थ–प्राप्ति करके जनता की गाढी कमाई से दुर्व्यसनों द्वारा इच्छित वासनाओं की पूर्ति करते हैं। ऐसे भेंट–दान दाता भी नर्क द्वाराधिकारी होते है, जिस को कोई नहीं बचा सकता ?

'शिष्य धन हरहि शोक ना हरहि, सो गुरु घोर नर्क महि परहि ॥'

जो हंस (संत) होते है वे मोती (सतगुरु शब्द साधन, शास्त्राध्ययन) को चुनते है और कोए (असंत–भेषधारी) अभक्ष (दुर्व्यशन) अपनाते है। ऐसे ही पारम्परिक सिद्धान्त मार्ग सम्प्रदायानुयायी सतगुरु, साधन श्रद्धा, सेवा, शास्त्र के आधार विद्वता परोपकार परमार्थ–साधना में रहते है। भेषी सन्त दम्भ भरे जीवन में सीमित क्षेत्र (छोटे दायरे) में गांव, नगर, विवाह–मृत्युभोज, मेला–सैलाब में अनायास (बिना काम से) घूमते रहते है।

वे व्यर्थ सामग्री–सम्पति बेटो पोतों परिवार के लिए जोड़ते है अथवा समाज से, चन्दा–चिट्ठा, लाग–भाग से जुड़े रहते है।

आज यही देखा जाता है कि षट् दर्शन विरक्त दीक्षा के देव–यज्ञ संस्कार में दीक्षार्थी के सांसारिक नाम को बदल कर सतगुरु द्वारा नया नाम रखा जाता है, किन्तु आज कल गृहस्थी बानाधारी या कण्ठीबन्ध साधु भी उन्हीं का वही सारा अनुकरण करते हैं अर्थात् भजन–काव्य बनाने–ग्रन्थ छपवाने में अगवानी करते, शिष्य शाखा मूंडने (भिक्षावृति) को बढावा देते, नया नामकरण करने, भेट लेने, महंताई की चद्दर औढाने आदि का सारा दम्भ कार्य योजना करते है, परन्तु घर परिवार को गुरु–शिष्य कोई नहीं छोड़ते है? और भौतिकता नौकरी अर्थ, दुकान, मकान, खेती, जमीन जायदाद के संयोग बढ़ाने के साथ वे अपनी भौतिक सम्पत्तियों को बढ़ाते है।

बस देखो ! ग्रहस्थ और त्यागी में क्या अन्तर रहा है ? अन्तर स्पष्ट है कि उनके द्वारा अपनी चल–अचल कोई सम्पत्ति शिष्य को नहीं देकर अपने सांसारिक पुत्र को ही दी जाती है।

आज संसार में बड़ा अजीबो–गरीब दम्भ भरा नाटक हो रहा है। शिष्य मुडते–भेट लेते हैं तब अपनी पहिचान अपने दीक्षा–शिक्षा गुरु–सतगुरु की बताते है और खेती मकान, दुकान आदि अचल सम्पत्ति खरीद अपने नाम पिता–पुत्र के नाम से ही की जाती है, तब

यह दम्भ का खुला ताण्डव है। इन का सीमित दायरा होते हुए भी अहंकार का भण्डार भरा पुरा पूर्ण रूप से रहता है।

क्या शासन शासित सरकार या षट् दर्शन के मुर्धन्य महन्तों–अखाड़ों अथवा द्वाराचार्यों के पास इस का कोई समाधान है ? इन के पास वाणी भजन प्रक्रिया आदि शास्त्री बोध के अतिरिक्त सम्प्रदाय पहिचान का गुरु गौरव ज्ञान या गुरु एवं वृद्धव की मर्यादा पालन भी नगण्यमात्र परीक्षार्थ भी शून्य है।

जनता सावधान नहीं है, अबोध अज्ञान ग्रही होने से बगैर परख भैषी लुटेरे से लुटी जा रही है। जो पंचयज्ञ संस्कार हीन साधु भेष में दो घोड़ों की संवारी में बैठते है, **गंगा जावे गंगादास–यमुना जावे यमुना दास** या नाथ घराने की चद्दर होकर रामस्नेही या गिरि–पुरी भी बने रहते है और वैष्णव भी है, जो आध्यात्मिक एवं व्यवहार से भी भटके हुए है अर्थात् गुरु सान्निध्य अध्ययन नहीं करके मनमुखी यत्र तत्र शास्त्र या साधु सन्तों से पढ़ी सुनी बातों से जगत रिझावनी करते है, किन्तु ज्ञान के बौद्धिक निश्चय से शून्य है।

कई सन्त भेष में रह कर अफीम, शराब, बीड़ी, हुक्का आदि नशों में भी डूबे रहते है, कई मांसाहारी भी बने रहते है, शिव के नाम को बदनाम करने वाले छद्मवेषी दम्भ से भेट रहते है। ये लोग गुरु सम्प्रदाय की वृद्धव रीति–नीति मर्यादा–ज्ञानहीन व्यवहार में भी झूठे बोलते हैं, ना वे दशनामी ना वैष्णव, ज्ञानहीन गौरवे वस्त्रों में होकर भी महामण्डलेश्वर, आचार्य पद से प्रतीष्ठित हो रहे है, ऐसे ही कुछ आडम्बरधारी जिनके गुरु घराने का या धर्म सम्प्रदाय के सिद्धान्त का भी पता नही है या मर्यादाहीन गुरुद्वारा–परम्परा से बेमुख है, जिन्हें अपने सिद्धान्त का ज्ञान भी नहीं है, वैसे पालतू कूकरियों के गले के ग ले पट्टी की तरह पीला–काषाय कपड़ा गले में लपेट कर पाखण्ड में भिक्षावृत्ति को बढावा देते है, साधु वेष का आडम्बर बना कर गृहस्थ में रहते भी भेंट–पूजा प्रतिष्ठा लेकर घर व्यवहार चलाते है। क्या यह ठीक है ? ये दो चार भजन गायक चेले–मूंडने में माहिर पाखण्ड बढाने के कार्य करते है। जब साधुत्व की गुरु दीक्षा लेता है, भेष धारण करता है, तब दिव्य देव–यज्ञ संस्कार में माता–पिता के साथ जाति, गौत्र, कुल, वर्णाश्रम सब का त्याग कर विरक्त होता है तब वह सनातन धर्म का ऋषि प्रणालीय प्रचारक धर्माचार्य होता है अर्थात् धर्मरक्षक (सनातन का व्यक्तित्व धारक) होता है, परन्तु आज के वही सन्त जाति–पान्ति कुल परिवार की पहिचान के भेदभाव में फंसे समाज को जोड़ने और अपने को पुनः उसी पूर्वावस्था में परमहंस धर्माचार्य संत, महामण्डलेश्वर भी छः भ्रम में फंसे नजर आते है।

सनातन धर्म सिद्धान्त के धर्म शास्त्रों एवं सन्त मत के विरुद्ध व्यवहार और व्यवस्था में देखने को मिल रहे है। यह भारतीयता राष्ट्र को तोड़ने और हिन्दु शास्त्र के विरुद्ध सर्वथा अनैतिक कार्य है। आज के पढ़े लिखे विद्रान व्याकरणाचार्य–शास्त्री स्नातक उपाधियों से

सम्मानित भी भ्रमित हो रहे है। उदाहरण– व्याकरण पढ़ते–पढ़ाते समय संज्ञा ज्ञान में जाति वाचक, संज्ञा को पढ़ाते है, तब घोड़ा, गधा, गाय, बकरी, मानव आदि पढ़ाते है उन्होंने न्याय शास्त्र भी नहीं देखा–फिर यह ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य आदि नहीं पढ़ाते है फिर – यह जातिवाद कहां के व्याकरण भाषा से आया ? कोई पण्डित विद्वान बता सकता है क्या ?

आप मूर्ख है और समाज को भी मूर्खता पूर्ण जहर पिलाने में भी शर्मनाक बात है।

विश्व प्रसिद्ध श्री वैष्णव विरक्त गूदड़ गद्दी जोधपुर के आद्याचार्य स्वामी हरिरामजी 'वैरागी' की शिष्य परम्परा में बरसाती मेंढकों की तरह महा मण्डलेश्वरों की भीड़ पैदा होने लगी है। प्रधान जी आर्थिकता से लाभान्तिव होने की विशेषता में साधु मर्यादा को गैंडा दिखाने लगे है और पद–प्रतिष्ठा के बुभुक्षू बानाधारी सामाजिक चन्दे चिट्ठे की शैली वाले साधुजन महामण्डलेश्वरों के पद पर्याप्त कर रहे है। आम भोले भाले अशिक्षित या विकर्षित साधु मर्यादा से अनजान लोगों को भ्रमित करने और भेट के भूखे महामण्डलेश्वर से दि कुछ प्रश्न पूछे जाए तो उत्तर शून्य होगा।

ऐसे मिथ्यावादी देह अध्यास में व्यर्थ ही जीवित रहते है, ऐसे कृतघ्न जीवन से तो कटारी खाकर मरता क्यों नहीं?

समीक्षा–इन्दव छन्द

व्यर्थ चेष्टा रू भौतिक वाद में, आपनो जीवन आप बिगारे।
प्रपंच माहि लाग रह्यो शठ, भेष आडम्बर साधुको धारे ॥
सत्य सनातन अध्यात्म साधन, ज्ञान रू ध्यान को चित विसारे।
'रामप्रकाश' यों अकारथ जीवन, भूमि को भार समाज असारे ॥45॥

वेद वेदांग पढ़े षट शास्त्रज, व्याकरण सहित सिद्धान्त विचारे।
संत के वेष में साधक होकर, अन्ततः कृतघ्नी भोग संवारे ॥
नौकरी छोकरी लालच लाग के, भौतिकवाद प्रपंच पसारे।
'रामप्रकाश' कृतज्ञता भूल के, मानव जीवन आप बिगारे ॥46॥

उत्तम भेष आडम्बर धार के, राजनेता पक्ष–अपक्ष को धारे।
पंच पंचायत खण्डन मण्डन, गुरु मर्याद को मूल बिसारे ॥
सम्पत्ति जोड़त तात सुता सुत, पाल परिवार के हेतु संवारे।
'रामप्रकाश' जब शिष्य बनावत, गुरु सम्प्रदाय को नाम उचारे ॥47॥

दोगले जन सो द्वैत विचारक, घर के होत न त्याग धरावे।
धोबी के श्वान को जीवन पालक, कहा कहूं वे समाज नसावे ॥

प्रपंच लाग रह्यो होय पण्डित, गावत राग अलाप ऊँचावे।
'रामप्रकाश' वे हंस के भेष में, काग समान समाज जमावे॥48॥

उज्वल भेष या लाल दिगम्बर, माला कण्ठी गल छाप लगावे।
शास्त्र बात सुधार बतावत, व्यवहार नहीं वे सुद्ध बनावे॥
गुरु सन्त भेष मर्याद बिना वह, होय मण्डलेश्वर लाज न आवे।
'रामप्रकाश' वह लोक बिगारक, भेषी सन्त वे नर्क सिधावे॥49॥

मनोहर छन्द

कहावे कपूर देन, हींग की तो बास नाही।
नाम धनपाल धरे, भीख मांग खायके॥
पढयो है वेदान्त कछु, बोलिबे को सीख्यो तब।
वाद हि विवाद करे, युगति लगाय के॥
पोपट ज्यो बोले हृदे, ग्रन्थ सो ना खोले–सार।
सार हि को लेता नाही, रह्यो है ठगाय के॥
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना मूढ तू ? कटारी पेट खाय के॥20॥

भावार्थ–हे मानव ! कई व्यापारी कपूर देने की बात करते है परन्तु उन के पास देने को हींग की गन्ध भी नहीं होती ? ऐसे ही कई गृहस्थ जन अथवा 'नारी मूई घर सम्पत्ति नासी, मूँड मुडाय भये सन्यासी' इत्यादि घर परिवार पीड़ित या घर–परिवार पालने, अर्थ–उपार्जन, प्रतीष्ठा हेतु दम्भ पूर्ण भगवाँ वस्त्र से रंगित या गले में उपवस्त्र–मालाऐं भरकर सिद्ध बने रहते है। परन्तु उनके पास जीवन–व्यावहारिक शिक्षा–आचार–विचार भी नहीं है। जैसे कोई अपना नाम धनपाल (कुबेर), लखपति आदि रखले परन्तु उनका क्रिया कलाप आजीविका साधन भिक्षावृत्ति (मंगनहार) होता हो ?

कुछ वेदान्त प्रक्रिया–शास्त्र सूत्र कण्ठस्थ करके बोलने का रटन अभ्यास भी करले और लिखना आते ही मनमुखी बगैर परीक्षा प्रमाण पत्र के ही अपने आप को स्वतः मन से ही आचार्य, महामण्डलेश्वर, वेदान्त–केशरी, वेदान्ताचार्य आदि मानद उपाधियों से विभुषित–प्रसिद्धि पाकर गर्वोन्मत फूले फिरते है और यत्र–तत्र वाद–विवाद, तर्क–कुतर्क युक्तियों की लापरता का बर्ताव करते रहते है।

जैसे पिंजरे का पक्षी पठित–रटित भाषा बोलता है **'सीताराम बन्दी छोड'** रटता हुआ भी पिंजरे के कारागार में बन्धा है। तैसे ही वेदान्तादि शास्त्र भाषा बोलता हुआ भी व्यवहार सुद्धि–मर्यादित जीवन से हृदय ग्रन्थी में मोह जनित भ्रम बन्ध से नहीं छूटता है। सार–असार का ज्ञान कहते हुए भी असार–असत्य का त्याग नहीं होता ?

ब्रह्मविद्या चतुर्अनुबन्ध से ग्रथित होने से विवेकादि साधन सहित मुमुक्षूजन अधिकारी से सतगुरु शरणागत अथवा अपने आप की निष्ठा प्राप्त का सिद्धान्त है, उसे अनाधिकारी जनों के सामने कथन करने का केवल मात्र अपनी विद्वता दरसाने के प्रलाप मात्र है, इस के अतिरिक्त कोई औचित्य नहीं है।

ऐसे व्यर्थ उद्देश्य भरे अमर्यादित एवं मिथ्या जीवन में देहाध्यास से जीवित रहने से अच्छा है कि ज्ञान की कटारी अन्तःहृदय (पेट) में आघात खा कर मरता क्यों नहीं ?

तृष्णा को हेतु वासना–इच्छा है, सेवत नित बढ़त हि पावे।
आग में घृत पड़े वृद्धि नित, क्रिया रू कर्म ते चौगुन थावे।।
वासना पूर्ण हेतु करे अनर्थ जु, घाणी के बैल ज्यो दौड़ लगावे।
'रामप्रकाश' सन्तोष बिना नर, तेरी तो भूख कभी नहीं जावे।।50।।

आयो थो कमावण खातिर, लागो गमावण पूण्य धन सारो।
कपूर सुगन्ध को खोय दई सब, हींग सी गन्ध भी नाहि सवारो।।
जैसो नाम धर्यो नर देह को, तैसो तो काम हृदय नहीं धारो।
'रामप्रकाश' यों सन्त पुकारत, खोवत जाय अमूल्य जमारो।।51।।

मनोहर छन्द

वणिज को आयो कहा ? हासिल कमायो धन ?
गांठ को गमायो भयो, भिखारी लुटाय के।।
सीख्यो चारों वेद बहु, भेद ताको जान्यो नाहीं।
फिरत है योंहि खाली, बोझ को उठाय के।।
धन ही अखूट तेरे, हाथ सो गमाय करि।
आप खूटि और को तू, देत है खुटाय के।।
कहै 'हरिसिंह' वृथा, देह में अध्यास करि।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के।।21।।

भावार्थ–हे मानव ! लख चौरासी भोगते हुए ज्ञात–अज्ञात अभूत पूर्व पूण्य प्रभाव से जन्म–मरण के भव भ्रमण का छुटकारा (मुक्ति) प्राप्ति हेतु प्राणी को मनुष्य शरीर मिला है। जो प्रभु भक्ति तत्व ज्ञान प्राप्ति हेतु साधन–व्यापार करने को आया था परन्तु अब तक जीवन में कितना क्या कमाया ? अपने कल्याण हेतु आध्यात्मिक धन क्या कमाया ? जिस पूण्य को लेकर आया था, उस को भी भोगो में व्यस्त होकर गांठ का गमा (हार) गया और धर्म–क्रिया हीन पुण्य क्षीण होने से सब कुछ लुटा दिया और पुनः पुण्य हीन भिखारी नर्क का अधिकारी हो गया।

चारो वेद–वेदांग, षट् शास्त्र व्याकरणादि अध्ययन करके भी मूल तत्व भेद के सिद्धान्त को नहीं जाना और कागजों के पुलिन्दे–शास्त्रों के बोझ को उठाते हुए यत्र–तत्र भ्रमण करता हुआ कृतज्ञता को भुला कर कृतघ्न होकर सभी प्रकार से मर्यादा हीन रिक्त कमाई (खाली) ही रह गया।

आत्म–परमात्म बोध का तत्वज्ञान अमूल्य–अखूट नित्य निरतशानन्द धन तेरे पास में था, उसे यों ही सांसारिक वासना कृत कर्मों में उलझ कर व्यर्थ में खोकर हार गया। अरे भाई ! आप तू तो दरिद्र हुआ ही हुआ, परन्तु अपने संगी–साथियों, मित्र–उपासकों को भी खूट कर्मकाण्ड के आडम्बर जन्म कंगाली में डाल कर पूण्यक्षीण करके दरिद्र बना दिया।

अरे मूर्ख ! मानव जीवन में व्यर्थ ही रहा और भ्रम–अध्यास में जीवित रहने से अच्छा है कि ज्ञान कटारी को पेट (अन्तःकरण) में मार कर मर क्यों नहीं जाता ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

जग प्रपंच में जीत जीत कर, अमूल्य हीरा नर हार गया।
कौडी कीमत व्यर्थ नासक, मानुष जन्म का निस्तार गया ॥
भोगों हेतु जीवन खोवत, आध्यत्मिक साधन सार गया।
'रामप्रकाश' यों संन्त चेतावत, जीती बाजी को प्रहार गया ॥52॥

मनोहर छन्द

सतगुरु देव ब्रह्म–वेता के शरण जाय
चौरासी के फन्द तोको, देवेंगे छुड़ाय के ॥
कौन हूँ मैं कहाँ से आयो ? करि ले विचार ऐसो।
देही रूप होय, रह्यो – देह से जुड़ाय के।
देह को प्रकाश तीन – काल में नाहि होय।
काहे को तू बन्ध फिरे, छूटजा तुड़ाय के ॥

'कहै' हरिसिंह मिथ्या, देह में अध्यास करि मरे क्यों ना? मूढ तूं, कटारी पेट खाय के ॥22॥

भावार्थ—हे मानव ! ब्रह्मवेता ज्ञानी सतगुरु के पास शरणागत प्रणिपात समित्पाणि हो जा, वह तुझे लख चौरासी के भव-भ्रमण के बन्ध (फन्द) से छुड़वा कर मुक्त कर देगे।

तद्विद्धिप्रणिपातने परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनतत्त्वदर्शिन :॥गीता-4/34

हे मुमुक्षू ! तू तत्वदर्शी महापुरुष के पास जाकर भली प्रकार (चर्तुसाधन सहित) प्रणत भाव से (दण्डवत प्रणाम करके, अहंकार रहित हो शरणागत होकर) सेवा करके निष्कपट भाव से प्रश्न ? करके तू उस ज्ञान को जान। वे तत्व को जानने वाले तत्वदर्शी ज्ञानी जन तेरे लिये उस ज्ञान का उपदेश करेंगे और साधना पथ पर चलायेंगे।

समर्पित भाव से सेवा करने के उपरान्त ही इस ज्ञान को जानने-साधने की क्षमता आती है।

किमत्र बहु नोक्तेन शास्त्र कोटि शतेन च ।
दुर्लभा चित विश्रान्तिः विना गुरुर्कृपां परम ॥

अर्थात् बहुत कहने से क्या ? करोड़ों शास्त्रों से भी क्या ? चित्त की परम शान्ति, सतगुरु के बिना दुर्लभ है।

प्रथमतः यह विवेक पूर्ण विचार करले कि "मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाना है ? यह जगत क्या है ? ईश्वर क्या है ? सत्य क्या है ? असत्य क्या है ? इत्यादि के बिना विचारे योंही देह रूप भौतिकता का अस्तित्व मान बैठा ? इस देहाध्यास के मिथ्या मोहान्धकार में गठित (जुड़ाव) हो रहा है।

यह जड़ शरीर तीनों काल में स्थिर नहीं रहेगा। व्यर्थ ही अनित्य में 'नित्य' अनात्म में आत्म, दुःख में सुख, अशुचि में शुचि रूप अविद्यान्धकार में भ्रम भाव से बन्धायमान होकर भव भ्रमण का हेतु बन रहा है।

यह मिथ्या भौतिक देह सर्वदा तीनों काल में अस्थिर (रहने वाला नहीं) है। जो बाल, युवा, तरुण, प्रौढ, वृद्ध रोगादि विविध दशा (अवस्थाओं) में पीड़ित परिवर्तित होने वाला है। इस बन्धन को तुड़वा कर सदैव के लिये छूटवा कर मुक्त हो जा।

यदि ऐसा नहीं कर सकता ?, तो व्यर्थ मिथ्या देह में अध्यास करके रहने से तो मूर्ख कटारी को पेट में खाकर मरता क्यों नहीं ?

मनोहर छन्द

बाहिर से वृति तेरी, खैंचि कर भीतर को ।
सोहं सोहं जाप सदा, रह्यो है जपाय के ।।
आम को उखाड़ पेड़, बबुल को बीज बोवे ।
ताको तू करत बाड़, चन्दन कटाय के ।।
हीरा सो तो मूठी भरि, फेंक देत द्वार बार ।
जूती को यतन करि, राखत छुपाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना ? मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।23।।

भावार्थ–हे मानव ! बहिरंग वृतियों को खेचिकर सात्विक भाव से लक्ष्यार्थ वृत्ति को अंतरंग जोड कर सोहम् सोहम् (त्वंपद–जीव, तत्पद–ईश्वर, असिपद–जीवेश्वर) के वाच्यार्थ का त्याग कर लक्ष्यार्थ ब्रह्मस्वरूप सोहमस्मि जप कर के स्वयं को जान ले !

हे बन्धु ! अपने अमूल्य नरतन को विषय–बबुल के ऑरोपन में वासना का बीज बोता और मुक्ति द्वार श्वासा चन्दन के वृक्ष को व्यर्थ खोता (काटता) हुआ जीवन चन्दन में विषय के बीज–वासना का संरक्षण कर रहा है, जो आगामी जन्म–मरण के कण्टक–शूल ही परिणाम में लगेंगे।

अमूल्य हीरा जैसा मानव जीवन की श्वासा को सांसारिक विषय भोगों (क्षणिक सुख) में मूठी भर भर कर फैंकता जा रहा है और पांव की जूती के समान तुच्छ विषय वस्तु को अति यत्न पूर्वक नाना तरह से रक्षित उपाय के छुपा (गोपनीयता) कर रखता है।

हे मूर्ख ! अज्ञान पल्वित क्रियाओं के ऐसे मिथ्या जीवन जीने से पेट में ज्ञान कटारी झोंप (खा) कर मर जाता क्यों नहीं ?

मनोहर छन्द

तूँ तो सच्चिदानन्द घन, आतमा अखण्डता को ।
जीव जानि देवे भव–सिन्धु में डुबाय के ।।
नाहि तीन देह तेरे, स्थूल शूक्ष्म कारण जो ।
कारण को साक्षी होय, दीजिये उडाय के ।।

काज न अकाज कछु, कियो ना विचार–घर– ।
बार तजि जाय बैठो, मूड ही मुडाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू, कटारी पेट खाय के ।।24।।

भावार्थ–हे मुमुक्षू ! तू स्वतः सत चित आनन्द धन (ठसाठस) भरपूर अखण्ड आतम तत्व है, किन्तु अपने स्वरूप को भ्रम वश भूलकर जीव भाव से मान लेने से वारम्वार होने वाले (समुद्री तरंगों के समान) जन्म–मरण के पुनरागमन भवसागर में डूब रहा है।

यह प्राकृतिक भौतिक रचना के तीन शरीर

1. स्थूल–पांच तत्व, पच्चीस प्रकृति वाला नाम–रूप, रंग वाला।

2. सूक्ष्म–पांच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, अन्तकरण प्रमुख मन और बुद्धि सतरह तत्व को लोकालोक गमनागमन वाला, कारण सहित अष्टयुरी में चिदाभास।

3. कारण–अज्ञान (अविद्या विहित भ्रम)

मलीन माया अविद्या कृत तमो–रजो का साक्षी अधिष्ठान तू है। ऐसे साक्षी स्वरूप की निष्ठा करके भ्रम की निवृति कर त्रिगुणात्मक सामग्री को समूलतः उडादे।

हे बन्धु ! कार्य–अकार्य, सत्य–असत्य का तुमने विचार भी नहीं किया और सांसारिक भाव से बन्धे घर बार पारिवारिक सम्बन्ध माता–पिता बन्धुजनों आदि को छोड कर मूँड मडवा कर भेषी–साधु होकर भी जाति–पांति भाव व्यर्थ में जीवन धोबी के श्वान की भांति भटका गया।

हे मुर्ख ! व्यर्थ अपवाद से देहाध्यास में भटक रहा है, तो ज्ञान कटारी खा कर मरता क्यों नहीं ?

समीक्षा–इन्दव छन्द

मात पिता तज बाँधव कुल को, सुत सुता तज नारि को सारे।
कायर काम बिगारत आलस, दम्भ के काम उपासत भारे।।
भेष बनावत आपहि रंग के, नाम उपाधि मन मानद धारे।
'रामप्रकाश' कछु लाज न आवत, मौद बढा अहं गर्व घनारे।।53।।

तात रू कुल परिवार को त्यागत, जात जमात में नीचता पाई।
साधु–सम्प्रदाय गुरुभेष के आगिल, निगुणा ईज्जत आप गमाई।।
विद्या पढ़ी अविद्या माहि उलझत, वेद वेदांग सो काम न आई।
'रामप्रकाश' करी भव में ठोरहि, आवागमन की ठोर बनाई।।54।।

मनोहर छन्द

जाति कुल वरण को, तज्यो अभिमान–मात ।
तात ही को नाम सोतो, दीनों है भुलाय के ।।
और हि चढायो रंग, बाढ्यो अभिमान देखो ।
काढि के बिलाड़ी बैठो, ऊँठ हि घुसाय के ।।
लोक में पुजावे आप, गुरु हि कहावे मन ।
बहुत फुलावे देखो, पंच में पुछाय के ।।
कहै 'हरिसिंह' मिथ्या, देह में अध्यास करि ।
मरे क्यों ना मूढ तू ? कटारी पेट खायके ।।25।।

भावार्थ–हे मानव ! अपने भौतिक शरीर के सम्बन्धी सांसारिक रिस्ते नाते में नाम, जाति, कुल, गोत्र, वर्ण सहित माता–पिता का नाम गौरव सब कुछ भुला दिया ।

अपने भौतिक सम्बन्धी सम्बोधनों का त्याग करके अपने पर दूसरा रंग चढ़ा लिया तथा गर्वोन्मत अहं मतवाल को और भी बढ़ा दिया । अरे ! विकार निवृत्ति के लिये साधु सांग पहना तथा उनको और भी ऐसे बढा दिया जैसे कोई बिल्ली को निकालकर ऊँठ को घर में डाल दिया ।

दृष्टान्त–एक अकेली बुढ़िया एक बिना दरवाजे झोपड़ी नुमा खुले भवन में रहती थी । रात के समय एक बीमार बिल्ली आ गई और झोपडी के आगे द्वार पर बैठी और वहीं मर गई । बुढ़िया ने सवेरे उठते ही देखा बिलाव मरा पड़ा है । बुढ़िया ने सोचा कि अभी रात का अंधेरा है, कौन देखता है ? मैं ही कचरे के साथ पात्र में उठाकर फेंक आऊँ । चूंकि सवेरे सूर्योदय के बाद उठाने वाले पैसे मांग के अर्थ लाभ लेंगे और कई लोग देखने वाले भी कुछ भला बुरा कहेंगे तो अभी से बाहर फिंकवा आती हूँ ।

अतः कई विचारों के उलट फेर करते उस मरे बिलाव को कचरे के साथ डलिया (लोह पात्र) में डाल कर बाहर दूर कचरे के ढेर पर फेंकने को चली गई । पीछे से कोई सड़ियल ऊंठ धीरे–धीरे रेंगता हुआ उस बुढिया के घर–आंगन में बैठा और वहीं पर बुढ़िया आने से पहले ही मर गया । बुढ़िया जब वापिस आई तब घर में देखा कि हाय ! बिल्ली तो हल्की छोटी थी, वह तो लोक लज्जा और पैसे बचाने के बचाव करने, चक्कर में बाहर फैंक आई । परन्तु अब ऊँठ के भारी भरकम देह को अकेले कैसे बाहर फेंका (डाला) जाय ?

यही स्थिति संसार के माता–पिता सहित भौतिकता को छोड़कर भेष धार करने वाले आडम्बर धारी अर्थलाभ एवं प्रतीष्ठा की वासना में डूबने वालों की हो रही है ।

बगैर आसन दिये किसी के घर पर बैठते भी ? मान–प्रतिष्ठा के गर्व में खड़े प्रतीक्षा करते है, तथा भेंट दिये बिना सदग्रहस्थ सेवक को कई प्रकार से लतेड़ देते है।

इसी दृष्टान्त को कवि अपने वाक्य बोध पद्य में उद्धृत करते हुए लिखते है।

काढि के बिलाड़ी बैठो, ऊँठ को घुसाय के।

ऐसे साधु वेष धारण करने वाले लम्पट–लोभी गुरु–स्वामी बन बैठे है और लोक रिझावन के सांग में प्रफुल्लित होते पंच–पंचायत में पूछके धन का लाभ भाग लेने या मांगने में लगे रहते है।

पहले साधारण जाजम पर बैठते और अब अभिमान भरे अहं का ऊंठ बैठने से बगैर आसन बैठते भी नहीं है, आसन की प्रतीक्षा करते है।

हे मूर्ख ! ऐसे मिथ्या शरीर में देहाध्यास करके अहंकार में जी रहा है, इस से अच्छा है पेट में **ज्ञान कटारी** खा कर मरता क्यों नहीं।

समीक्षा–इन्दव छन्द

नाम रु कुल के गौत्र बन्ध्यो चित, वंश वर्ण रू आश्रम आने।
छोड सभी जग भेष धर्‍यो सन्त, गर्व भर्‍यो अभिमान बढाने॥
विकार सो त्याग के हेतु कर्‍यो कहि, बह्यो भव हेतु वर्णाश्रम माने।
'रामप्रकाश' धिकार बण्यो सन्त, भ्रम में बन्ध के भव को ताने॥55॥

बबूल को पेड़ लगा कर रक्षण, चन्दन बाड़ करी भल भाई।
गंग गुलाब को नीर सिंचावत, आयु विहावत मुर्खताई॥
व्यर्थ जीवन कंटक हेतु ले, फंस्यों प्रपंच मे भेष बनाई।
'रामप्रकाश' हो मूर्ख–चातुर, पर उपदेश ते अर्थ उपाई॥56॥

जात रू पांत में भटक रहे सब, भेष पहन के सन्त कहावे।
बाहिर आडम्बर लोक रिझावन, कथा इतिहास के गीत सुनावे॥
साधन ज्ञान अध्यात्म के बिन, मोल बिके सब बात बनावे।
'रामप्रकाश' गुरु रीति तजी सब, करे पाखण्ड में लोक रिझावे॥57॥

जाति गुरु सब सन्त बने ठग, सम्पति आश्रम ऐसे ही ठाने।
जाति समाज में बन्धे रहे सब, शिष्य करे जाति भेद बतावे।
जगत व्यवहार की बात करे सब, ज्ञान बिना बहु होठ हलावे।
'रामप्रकाश' गुरु रीति तजी सब, त्याग वैराग बिना सब गावे॥58॥

बाल बढावत मूँछ कटावत, दाढी हठावत हैप्पी बनावे।
नाच नचावत सांग दिखावत,रॉडिया भक्ति के भेदे दिखावे।
घुटमघुट रू जुटम जुट की, नीति तजी यह साधु निभावे।
"रामप्रकाश" परम्परा छोड़ के, लोभ लगे सब भीड़ जुटावे ।।59।।

वेदान्त सिद्धान्त के शास्त्र पढ़े अरू, वाचक ज्ञान भयो चित भारी
वाक प्रलाप रू बाद विवाद में, कुतर्क तर्क में बात संभारी ।।
लोभ लग्यो चित सम्पति जोड़त, ममत्व मोह लग्यो गृहचारी।
'रामप्रकाश' ले साधन को नित, त्याग वैराग ना चित में धारी ।।60।।

प्याले में भांग ते एक पागल हो, घर में घुले तो परिवार नशाई।
कुए में भांग तो गांव नशा रत, समुन्द्र भांग पड़ी जग मांई ।।
मद मस्त भया यह हिन्दु सनातन, जाति की भांग घुली चित आई।
'रामप्रकाश' ये शत्रु समाज के , मानव समाज में फूट फैलाई ।।61।।

कर्म से वर्ण मानत सब शास्त्र, ऋषि मुनि कथ लक्षण बताई।
जन्म से जाति चौरासी लखावत, बदल सके नहीं कोटि उपाई ।।
व्याकरण संज्ञा बतावत मानव, जाति में वर्ण को मूढ मनाई।
'रामप्रकाश' मनमुखी पढे सब, वेद उदधि गुण गुरु लखाई ।।62।।

सवैया छन्द

दुर्लभ देह धरी सो खरी, कबहूँ सतसंग तें नाहि कस्यो।
विषय भोग को भाव करि कपटी, भव सागर पूर में जात बह्यो ।।
तू तो पुत्र पशु धन धाम दारा सब, मेरो हि मेरो करि मोह कह्यो।
'हरिसिंह' के शुद्ध विचार बिना ऐसो, मूढ को मालिक होय रह्यो ।।26।।

भावार्थ–हे मानव ! ऐसी सुन्दर नर–नारायण साधन धाम देह दुर्लभता से पूर्व अर्जित अनेक बड़े भाग पुण्य से धारण की है।

सन्तदास नर देह दुर्लभ, पीछे दुर्लभ भेख।
महादुर्लभ सतगुरु मिलन, पीछे दुर्लभ अलेख ।।

–सन्तदास अनुभव विलास 18/4

यह तो सब ठीक उचित है, परन्तु ऐसा उत्तम नर तन प्राप्त करके भी कभी सतसंग में नहीं गया, सत्य का संग कभी नहीं कर पाया।

विषय भोगों की भावना से सदैव कपट भाव के छल छद्मवेष से चला हुआ भवसागर की धार बहता जाता है।

तूँ निरन्तर पुत्र, दारा (स्त्री), धन–धाम पशुवादि चल–अचल सम्पत्ति के अहंकार में सब को मेरा–मेरा कहता ममता में मोहित हो रहा है।

आध्यात्म तत्व वेता संत हरिसिंह कथन करते है – अपने कल्याण दायक तत्व विचार किये बिना ऐसी मूर्खता का स्वामित्व धारण कर रहा है अर्थात् मूर्खता का मालिक हो रहा है।

इन्दव छन्द

सुखी होय दुःख दूर तेरो, सतसंग में मेरो मान कह्यो।
तू तो भूलि गयो हरि भक्ति सबै, ब्रह्मज्ञान पदार्थ क्यों न गह्यो।
तुच्छ भोगनि काज उपाय अनेक, करि शठ संगत आयु बह्यो।
'हरिसिंह' के शुद्ध विचार बिना ऐसो, मूढ को मालिक होय रह्यो।।27।।

भावार्थ–हे मानव ! पापों के हर्ता तत्व विचार को धारण कर ले तो सुखी हो जायगा, त्रिताप जन्य समूह दुःख दूर हो जायेंगे। हमारा कहना मानो ! सतसंग–सन्त सान्निध्य में जाओ ! तू एक प्रभु की नवधा भक्ति को भूल गया है ! सर्वभक्ति का मूल तत्व दर्शन हेतु ब्रह्मज्ञान पदार्थ क्यों नहीं प्राप्त करता ?

तूच्छ सांसारिक भोगों के लिये देश–विदेश, सर्दी–गर्मी भूख–प्यास सहन करता, भटकता अनेक उपाय करता है और मायावी मूर्खों का संग करते सारी आयुभर बहता(चलता) गया।

अध्यात्म ज्ञान (हरिसिंह) के शुद्ध विचार किये बिना अपने आप मूर्खता का स्वामी हो रहा है।

मनोहर छन्द

करत गुमान एक, देह अभिमान ऐसो।
आप माहि आपो आप, फुल्यो ही फिरत है।।
नहीं वपु तीन तेरे, चेतन स्वरूप शुद्ध।
गीता गुरु वेद वाक्य, साख जो भरत है।।

सार रू असार ही को, करि ले विचार आप।
देह को हूँ मान मूढ, काहे को मरत है ।।
जानो 'हरिसिंह' सत, गुरु गम भयो तब।
चौरासी के फन्द हूँ में, कभी ना परत है ।।28।।

भावार्थ–हे मानव ! ऐसी मूर्खता धारण करके गुमान भरा देह अभिमान में अपने आप से फूला फूला मन मिठू बना हुआ रहता है।

वस्तुतः स्थूल, सूक्ष्म, कारण, यह तीनों शरीर तुम्हारे नहीं है। यह प्राकृतिक (माया–अविद्या) रचना में भौतिकता लिये प्रकृति (मलीन तमोगुण माया) का उपादान है। तुम तो शुद्ध स्वरूप अछेद्य–अभेद्य, अदाह्य, अकलेद्य है। पूर्ण परमानन्द हो। ऐसा उद्घोष श्री मद्भगवद्गीता, सतगुरु देव एवं वेद वाक्य (उपनिषदों के महावाक्यों) द्वारा साक्ष्य रूप से हो रहे है अर्थात् उपर्युक्त प्रमाण प्रसिद्ध है।

अब अपने अन्तःकरण में सार–असार, सत–असत, उचित–अनुचित का विचार कर समझ लो। मिथ्या शरीर की मानन्दी करके मूरख क्यों हो रहा है ?

हे मूर्ख ! मिथ्या शारीरिक सम्बन्ध के अध्यास में डूब कर क्यों जन्म–मरण के भव भ्रमण में भ्रमित होता है ?

सिंह गर्जन से निर्भयता पूर्वक कवि सम्बोधन करते है कि –ऐसा समझ लो कि सतगुरु देव के द्वारा ज्ञान गम (तत्व साधन रहस्य) का हृदयाङ्गम हो गया, तब फिर लख चौरासी योनियें के कर्म–बन्धन के फन्द में कभी नहीं गिरेगा।

दोहा छन्द

हर्ष शोक मन को गयो, शान्त भयो है चित्त।
सतगुरु, राम प्रसाद ते, जान्यो नित अनित ।।29।।

भावार्थ –सत्यवक्ता स्व सम्बोधन में कवि का उद्गार है – हृदयोल्लासक चित शान्ति को प्रमाणित करते कथन करते है – सतगुरू श्री रामजी के कृपांकुर से नित्य–अनित्य, सत्य–असत्य का ज्ञान हुआ। इसी के प्रताप (प्रभाव) से हमारे अन्तःकरण (मन) में हर्ष–शोक के समस्त द्वन्द दूर हो गये है और चित चंचला की निवृत्ति, परमानन्द की नित्य प्राप्ति से परम शन्ति प्राप्त हुई।

नित्यानित्य विवेक से, भई अविद्या नास।
हर्ष शोक से रहित जो, सोई ब्रह्म प्रकाश ।।30।।

भावार्थ–ब्रह्मकवि संत हरिसिंह जी अपना चित शान्ति मय निश्चय दृढाते हुए दर्शित करते है कि –

नित्यानित्य एवं सत्यासत्य (नित्य सत्य–सच्चिदानन्द, अनित्य–असत–प्रपंच) के विवेक (विचार) द्वारा असत्य–अनित्य मूल तमो माया (अविद्या) की समूल निवृत्ति हो गई। अब अन्तःकरण संकल्प–विकल्प के हर्ष–शोक से रहित नित्य परमानन्द स्वरूप है, वही ब्रह्म तत्व का सर्वत्र व्यापक ज्योर्तिमय प्रकाश है।

आप प्रकाश अखण्ड हो, सत चित आनन्द रूप।
'हरिसिंह' मन ते परे, सोहम् ब्रह्म अनूप ।।31।।

कविराज हरिसिंह जी कथन करते है कि –

मन के संकल्प–विकल्प स्वभाव से परे अतीत अपने आपका स्वयं प्रकाश अखण्डता पूर्वक सत, चित, आनन्द, अद्वैत, नित्य स्वरूप है, वही निरूपाधिक सोहम् ब्रह्म तत्व अनुपम है।

ज्ञान कटारी ग्रन्थ यह, सूक्ष्म कह्यो सु भाय।
शुद्ध मुमुक्षू पर सदा, अज्ञ तज्ञ पर नाय ।।32।।

शब्दार्थ–मुमुक्षू=विवेक (श्रद्धा, समाधान, विचार, सतसंग युक्त। वैराग्य=शम–दम, उपराम, तितिक्षा, सन्तोष युक्त भ्रम=संकल्प–विकल्प विषय चिन्तन से उपराम मन निग्रह। दम= पांचों विषयों का इन्द्रिय निरोध सहित उत्तम जिज्ञासु। अज्ञ=अज्ञानी, मूर्ख, ना समझ। तज्ञ=ज्ञानी, विद्वान, तत्वेवता।

भावार्थ–कवि ग्रन्थ रचना का उद्देश्य कथन करते है – यह उत्तम ज्ञान कटारी संक्षेप (समास) रूप से कथन की है, जो उत्तम जिज्ञासू (साधन सहित मुमुक्षू) के हितार्थ है। जो अज्ञानियों और तत्ववेता ज्ञानियों के लिये नहीं है, अपितु अज्ञ तज्ञानुवृति साधक पुरुषों के लिये नित्य चिंतन की रचना है और उन के सूक्ष्म अहंकार (पोहन) गर्व प्रताड़न हेतु साधना से अपोहन प्राप्त करने में सार्थक है।

रचनाकाल निर्णय

उन्नीस सौ छः में वर्ष, भयो सम्पूर्ण जान।
मृगसिंर मास रू शुक्ल तिथि, नवमी अरू भृगु मान ।।33।।

पद्यात्मक ज्ञान कटारी का रचनाकाल दरसाते है, वि.सं. 1906 मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी शुक्रवार (उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, कोलव करण–वरियान योग, शकः1731, दक्षिणायन, चित्राभानु नामक संवत में ग्रन्थ की सम्पूर्णता हुई।

टीका काल निर्णय

युग नभ धातु वेद कर, संवत तुला का मास ।
2 0 7 4 कार्तिक
शुक्ल पक्ष पूनम शनि, टीका रामप्रकाश ॥63॥

आकानां वामनो गति ईसवीत:

दो हजार चौहतरवें, विक्रम कार्तिक मास ।
थावर वार पूनम तिथि, टीका रामप्रकाश॥64॥

अश्व रवि नभ नैन सो, ईसा वामांगी अंक ।
7 1 0 2
चार नवम्बर को शनि, रामप्रकाश निशंक ॥65॥

इति श्री ज्ञान कटारी (दम्भ प्रताड़न यष्ठिका) समाप्त

गुरु प्रणालिका परिचय

(कुण्डलिया छन्द)

हरिराम परब्रह्म नमो, जीयाराम जगदीश ।
बनानाथ हरि प्रकटे, हरि सुखराम ईश ॥
हरि सुखरामा ईश, युगल मत भेद न कोई ।
अचलराम नवलेश, फूल[1] रु उत्तम[2] दोई ॥
नारायण[3] व दयाराम[4] अचल शिष्य साशीश ।
उत्तम विवेक वैराग्य वर, ज्ञान धार बह ईश ॥

— स्वामी दयारामजी

हरिराम गुरुदेव को, जीयाराम प्रणाम ।
सुख सागर सुखराम जी, अचलराम निष्काम ॥
अचलराम निष्काम, अद्वय अनन्त अपारा ।
उत्तमराम सोई तत्त्व लहि, भ्रान्ति भेद विडारा ॥
'रामप्रकाश' निष्ठा करी, गुरु गद्दी विश्राम ।
बारम्बार कर जोड़ के, नमो नमो हरिराम ॥

— स्वामी रामप्रकाशाचार्य

ॐ

श्री हरि गुर सच्चिदानन्दाय नमः

श्री

उत्तम ज्ञान कटारी ग्रन्थान्तर्गत

तत्वज्ञ स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी महाराज 'अच्यूत' कृत

भजनावली प्रारम्भ

भजन (1) राग झँझोटी पद संगीत

माईरी ! मोरे सतगुरु है घनश्याम ।।टेर।।

हृदय में हनुमान विराजे, रामानन्द अविराम ।।1।।

रोम रोम में राम बिराजे, मुख मांहि हरिराम ।।2।।

जीव मांहि जीयाराम सुहावे, श्रवण माहि सुखराम ।।3।।

अर्थ मांहि अचलरामजी, उर में उत्तमराम ।।4।।

पूरणबह्म सच्चिदानन्द सोई, निगुण सगुण अभिराम ।।5।।

'रामप्रकाश' अच्युत समायो, भूमा रूप विश्राम ।।6।।

भजन (2) राग झंझोटी पद संगीत

मांई री ! मोरे गुरु धर्म विश्वास ।।टेर।।

अजर अमर सनातन चेतन, श्री वैष्णव अविनास ।।1।।

शील सन्तोष श्रद्धा सन्त सेवा, सतसंग मन में खास ।।2।।

अष्ट शीष अर्पण कर पूरण, प्रणाम अष्टांग, सुख रास।।3।।

गुरु परम्परा इष्ट हमारो, शुद्ध सतोगुण आस।।4।।

तन मन के रोम रोम में, व्यापक रामप्रकास ।।5।।

भजन (3) राग झंझोरी पद संगीत

माईरी ! मोरे सतगरुर पधारे आज ।।टेर।।

रामानन्द श्री अग्रदासजी, नाभादास को नाज ।।1।।

सन्तदासजी संशय हरता, हरिराम सरताज ।।2।।

जीयाराम जीवों के स्वामी, सुखराम सुख साज ।।3।।

अचलरामजी, उत्तमरामजी, एक ही स्वरूप समाज ।।4।।

परमगुरु पुरुषोत्तम आदू, हरदम आनन्द राज ।।5।।

श्री वैष्णव धर्म प्रधान आचार्य, सकल सुधारे काज ।।6।।

'रामप्रकाश' के रोम रोम में , बस रह्या महाराज ।।7।।

भजन (4) राग झंझोटी पद संगीत

माईरी ! मोरे वरिष्ठ है गुरुदेव ।।टेर।।

ब्रह्मा विष्णु शंकर गणपति, शक्ति दिनेश सो सेव ।।1।।

सर्वेश्वर महेश्वर सोई, सच्चिदानन्द अभेव ।।2।।

पूरण आप भूमा धन स्वामी, अटल अगोचर भेव ।।3।।

अचलोतत्म सतगुरु सत सामर्थ, रामप्रकाश के टेव ।।4।।

भजन (5) राग झंझोटी पद संगीत

माईरी ! मोरे सतगुरु उत्तमराम ।।टेर।।

हृदय में हरिराम बिराजे, हरिसागर अभिराम ।।1।।

होठों में हनुमान उचारूँ, मुख में बसे श्री राम ।।2।।

रोम रोम में रमणीय रमता, धन आनन्द घनश्याम ।।3।।

'रामप्रकाश' नित चरण शरण में, पूरण पायो विसराम ।।4।।

भजन (6) राग झंझोटी पद संगीत

बधावो सखी ! सतगुरु आये द्वार ।।टेर ।।
स्वर्णथाल गंगाजल झारी, प्रेमभाव चितधार ।।1।।
पाँच सखी सतोगुण धारी, हिल मिल करे सतकार ।।2।।
मंगल आरती श्रद्धापूरण, ज्ञान ध्यान हितकार ।।3।।
उत्तमराम ब्रह्मवेता स्वामी, परमार्थी उपकार ।।4।।
भवसागर से पार उतारे, रामप्रकाश उचार ।।5।।

भजन (7) राग झंझोटी पद संगीत

माई री ! मोरे सतगुरु सुधारे काज ।।टेर।।
भवसागर में अनन्त युगों से, चौरासी भटका भाज ।।1।।
जन्म मरण के भ्रमजाल में, भोग्या खानि चव साज ।।2।।
अनन्त जन्म के पूण्य प्रबल से, पायो मानव राज ।।3।।
माता पिता सतसंग प्रभावी, संस्कार पाये आज ।।4।।
साधन संग सतगुरु कृपा में , पायो ज्ञान शिरताज ।।5।।
उत्तमराम 'ब्रह्मवेता दयालू, रामप्रकाश को नाज ।।6।।

भजन (8) राग आसवारी पद संगीत

साधो भाई ! गुरु कृपा पद पाया।
साधन सहित प्रयोजन पाँचों, हृदय ठीक ठहराया ।।टेर।।
ग्रन्थ शताधिक्य सन्त साहित्यक, सम्पादन रचना ठाया।
सम्प्रदाय–अध्यात्म शोध में, शब्द अनुपम लाया ।।1।।
गुरु स्मृति स्थल की पूजा, निज कर श्रेष्ठ बनाया ।
गुरु ग्रन्थों की टीका सम्पादित, कार्य प्रचार बढाया ।।2।।
व्यवहारिक पारमार्थिक दोनों, युक्ति भक्ति मन चाया ।
शास्त्र नीति रीति कर वर से, व्यशन जाति छिटकाया ।।3।।

सात द्वीप में खण्ड ब्यालिस, वाणो पांच विगताया।
भेद–उपभेद मुक्ति पांचों का, कर निर्णय दरसाया ।।4।।
भक्त–सन्त आश्रम परिकर का, सम्प्रदाय धर्म सम्भाया।
दीक्षा दिवस सतसंग गुरु पूजा, नियमित कर ठहराया ।।5।।
जोधपुर वैष्णव गद्दी उत्थापित, नवस्थापित थरपाया।
नशा मुक्ति पाखण्ड का खण्डन, जगत जाल बिसराया ।।6।।
गद्य पद्य पिंगल का परिचय, सब ही को समझाया।
'उत्तमराम' सतगुरु प्रसाद ते, पुरुषार्थ रंग रंगाया ।।7।।
वर्ग विहीन सामाजिक रचना, वैष्णव धर्म निभाया।
'रामप्रकाश' अच्युत का जीवन, इस विध खोल बताया ।।8।।

भजन (9) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! सन्त स्वभाव काई जाने।
परम जिज्ञासु सेवक साचा, मन मर्यादा माने ।।टेर।।
धीरज वन्त क्षमा उर संयम, ज्ञान वैराग उर आने।
शास्त्र बोध सतगुरु परवाणा, हरदम हरि मुख गाने ।।1।।
दृढ प्रतिज्ञा भाव वज्र से, मोहादि कर काने।
चित नवनीत कोमल दयालू, नीति बोध नित छाने ।।2।।
कुल की कान आन जग भव की, दूर करि दुमर्ति दाने।
निर्मोही निष्प्रह निर्द्वन्दी, एक अखण्ड लिवलाने ।।3।।
'उत्तमराम' अवधूत वैरागी, ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म माने।
'रामप्रकाश' ऐसा मन भावे, भवसागर भ्रम भाने ।।4।।

भजन (10) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! गुरु का भेद अपारा ।
शास्त्र सन्त अनन्त बखानत, पावत कोई ना पारा ।।टेर।।
गुणातीत गुरु गुप्त अनादि, निरअक्षर निरधारा ।
रूपातीत गुरु शब्द सनातन ,सोहम् ओम उचारा ।।1।।
सृष्टि भेद अनन्त उपाया, त्रिगुण तत्व विस्तारा ।
प्रकृति नाना रूप बनाया, सतगुरु सब से न्यारा ।।2।।
जल में रवि निर्लेप सदाई, नहीं हल्का नहीं भारा ।
सब में रमता दीखत नाही, गुरु शब्द निस्तारा ।।3।।
'उत्तमराम' गुरु गुण सागर, निर्गुण एक विचारा ।
'रामप्रकाश' अनामी चेतन, घननामी सन्त पुकारा।।4।।

भजन (11) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! सतगुरु शब्द विचारा ।
सब उत्पति उन्ही से कहिये, जानत गुरुमुख प्यारा ।।टेर ।।
गुरु है अभेद अनादी आदू, सच्चिदानन्द अपारा ।
प्रकृति पुरुष उन्हीं की छाया, आप अैपची न्यारा ।।1।।
गुरु है गुप्त रूप भी नाहीं, सगुण निर्गुण निरधारा ।
ज्ञानी ध्यानी पूर्ण बखाने, वेद भेद निस्तारा ।।2।।
सत्य सनातन सतगुरु चेतन, सब तिनका विस्तारा ।
भिलता नाही भेला रहता, जल कमल वत सारा ।।3।।
'उत्तमराम' सतगुरु निरञ्जन, ज्यों उदक में तारा ।
'रामप्रकाश' सोई है, सामर्थ, शास्त्र सन्त पुकारा ।।4।।

भजन (12) राग आसावरी पद संगीत

साधोभाई ! सतगुरु महिमा सारी।
परम जिज्ञासु परसे पूरण, लखता नहीं संसारी ॥टेर॥
ग्रन्थ पन्थ रू मत मतान्तर, गुरु गुण सभी सुधारी।
गुरु बिना भुक्त युक्त नहीं दरसे, गुरु मुक्ति दातारी ॥1॥
जो उपदेश जगत में सात्विक, शास्त्र सन्त पुकारी।
सोई है सतगुरु की वाणी, ता बिन सभी असारी ॥2॥
सर्गुण निर्गुण सतगुरु दाता, योग युक्ति भण्डारी।
शब्दावली शब्द रूप में, साक्षी सोऽहम्कारी ॥3॥
सतगुरु ''उत्तमराम'' सब गावे, ऋषि मुनि अवतारी।
'रामप्रकाश' हरि हर अज पूजे, मानत नहीं अनारी ॥4॥

भजन (13) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! सतगुरु की सब वाणी
नाम रूप विश्व में जेते, सब गुरु के अगवाणी ॥टेर॥
अगम निगम सन्त वर शास्त्र, अकथ अपार बखाणी ॥1॥
जो जो शिक्षा सुभ उपदेशी, सो सतगुरु की जाणी।
या विध समझ्या भक्ति जिज्ञासु, सो परस्या परवाणी ॥2॥
संसारी अज्ञानी मूरख, जानत नहीं अजाणी।
समझ्या सोई परम पद पावे, प्रकट यही सैलाणी ॥3॥
अनुभव वेता 'उत्तमरामजी, गुरु धर्म परसाणी।
'रामप्रकाश' सतगुरु शरणागत, पाया पद अबाणी ॥4॥

भजन (14) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई गुरु शिष्य का नाता।
समझे सन्त सो परम जिज्ञासु, वही परम पद पाता ।।टेर।।
पूर्वाचार्य सन्त भये जग मांही, सो भये परम विख्याता।
विधि निषेध का साधन करके, पाया पद अख्याता ।।1।।
मात–पिता भव भव में मिलते, लख चौरासी दाता ।
जगत जाल के मोह अलुझावे, भव सागर भरमाता ।।2।।
स्वामी–सेवक बदलते रहते, कर्म धर्म का खाता ।
पति–पत्नि का सांसारिक नाता, भव का सम्बन्ध कहाता ।।3।।
तीनों सम्बन्ध भ्रम के मांहि, नित्य बदलता जाता ।
गुरु–शिष्य का आध्यात्मिक नाता, सत का धर्म निभाता।।4।।
अविद्या रात अज्ञान अन्धेरा, मोह की नींद जगाता ।
असंख्य युगों के सूते जीव को, सतगुरु मोक्ष पठाता ।।5।।
सतगुरु वारम्वार धिकारे, द्वार छोड़ नहीं जाता ।
शब्द स्नेह इष्ट निभावे, जिज्ञासु शिष्य कहाता ।।6।।
जीव–ब्रह्म ज्यों सतगुरु पूर्ण, उत्तमराम अज्ञाता ।
'रामप्रकाश' शिष्य शरणागत, पूरा धर्म निभाता ।।7।।

भजन (15) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! सब में मैं हूं छाया।
चार वेद रू सन्त स्मृति, सब चेतन यश गाया ।।टेर।।
पाँच तत्व प्रकृति की रचना, सृष्टि खेल रचाया ।
त्रिगुण का विस्तार नाना विधि, चेतन सता उपाया ।।1।।
पच्चीस प्रकृति अंश उपार्जित, सगुण खेल खिलाया ।
पाँच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय,पांचों प्राण समाया ।।2।।

चार अन्तः करण चिदाभास के, चेतन जीव कहाया।
कुटस्थ ब्रह्म व्यापक विभुवत, सब चेतन की छाया ।।3।।
प्रकृति संचालक माया विशिष्ट सो, ईश्वर रूप बताया।
''उत्तमराम'' साक्षी घट रमता 'रामप्रकाश अमाया।।4।।

भजन (16) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! ऐसा देश मस्ताना।
व्यापक एक अगोचर पूरण, ज्ञानी सन्त पिछाना ।।टेर।।
सब का साथी संग में रहता, भूला भ्रम अज्ञाना ।
ज्ञानी भेद छेद भ्रम भांति, पहुँचे ठेठ ठिकाना ।।1।।
साधन संग सतगुरु की कृपा, पुरुषार्थ परमाना ।
ज्ञानी जन पहुंचे निश्चय कर, भटकत फिरे अभाना ।।2।।
हरिराम वैरागी आदि, परख्या आप अबाना ।।3।।
अचलराम जी उत्तमरामजी, असल पाया अस्थाना ।
'रामप्रकाश' राही पथ मत का, पाया परम निरवाना ।।4।।

भजन (17) राग आसावरी पद संगीत

आप हि चेतन शुद्ध अविकारा।
परमानन्द अद्वय परिपूरण, एक न दोय विचारा ।।टेर।।
सत्य सनातन चित अविनासी,आनन्द परम अपारा ।
अचल अगोचर अटल महाना, व्यापक ब्रह्म निरधारा ।।1।।
अस्ति भाति प्रिय अखण्डित, निर्गुण गुण भण्डारा ।
जीव ईश प्रकृति नहीं बाधा, नहीं द्रश्य संसारा ।।2।।
अद्रष्ट आप अधिष्ठान अधिष्ठाता, नहीं प्रपंच विस्तारा।
नाम रूप नहीं विधि निषेधा, एक दोय नहीं वारा ।।3।।

'उत्तमराम' स्वयं शुद्ध भूमा, अजर अमर निरवारा ।
'रामप्रकाश' द्वन्द नहीं द्रष्ठा, परा अपरा मन हारा ।।4।।

भजन (18) राग आसावरी पद संगीत

अपना आप है सब ही सारा ।
शुद्ध अद्वेत अपारा चेतन, शुद्ध अद्वैत अपारा है ।।टेर।।
वाणी खाणी द्वन्द नहीं कछु, प्रपंच नहीं पसारा है ।
परा अपरा प्रकृति नाहीं, गो गोचर सब हारा है ।।1।।
शब्दातीत में शब्दकोष का, नहीं रञ्च विस्तारा है ।
इन्द्रिय कोश अन्तः करण का, नहीं प्रपञ्च करारा है ।।2।।
कुटस्थ और चिदाभास का, नहीं कल्पना कारा है ।
जीव ईश माया ब्रह्म नाही, अद्वय में जीत न हारा है ।।3।।
योग न योगी भोग न भोगी, रोग न रोगी लारा है ।
''उत्तम राम प्रकाश'' है चेतन, सच्चिदानन्द विचारा ।।4।।

भजन (19) राग आसावरी पद संगीत

शिष्य को ! ऐसा गुरु भव तारे ।
आतम ज्ञानी संयम साधे, सत उपदेश उचारे ।।टेर।।
इन्द्रिय जीत सत्य का वक्ता, जत मत बोध संवारे ।
ब्रह्म वेता ब्रह्म निष्ठ परमार्थ, सत चित एक विचारे ।।1।।
व्यवहारिक परमार्थिक सुधारे, शिष्य का जीवन सुधारे ।
शास्त्र शोद्ध बोध दे युक्ति, शंका दूर निवारे ।।2।।
गुरु परम्परा मरियादा पालन, नीति रीति को धारे ।
जगत विकार को दूर भगावे, व्यशन नशे प्रहारे ।।3।।

युक्ति ज्ञाता भजन में राता, साधन सहित रतारे ।
ब्रह्मवेता ब्रह्मनिष्ठ उत्तम गुरु, रामप्रकाश उचारे ।।4।।

भजन (20) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! योगी साधे प्यारा ।
कर्म योग की विधि अनोखी, समझे साधक धारा ।।टेर।।
पहले दम है पाँच तरह के, अहिंसा सत्य की धारा ।
अपरिग्रह शील स्तेय को पाले, शुद्ध करे व्यवहारा ।।1।।
पाँचो नियम शौच सन्तोष तप, ईश्वर प्रणिधान विचारा ।
शास्त्र स्वाध्याय नित्य की क्रिया, तन मन पावन वारा ।।2।।
आसन विविध भाति चौरासी, सिद्ध–पद मुख्य आचारा ।
प्राणायाम युक्ति कर साधे, लोम विलोम प्रकारा ।।3।।
विषयों से मन निग्रह करना, चित एकाग्रहता वारा ।
प्रत्याहार साधन कर पूरा, प्रतिबन्धकाभाव सारा ।।4।।
दृढ़ धारणा निश्चय करते, ध्यान ध्येय इकतारा ।
सविकल्प समाधी ज्ञानी साधे, निर्विकल्प योगी न्यारा ।।5।।
पूर्ण योगी उत्तमराम जी, सतगुरु भेद उजारा ।
'रामप्रकाश' ईश्वर अनुरागी, योग विधि विस्तारा ।।6।।

भजन (21) राग आसावरी पद संगीत

सतगुरु ! अपनी टेक निभावो
समर्थ आप सकल के स्वामी, शिष्य को मत शरमावो ।।टेर।।
महिमा सुनत शरण में आयो, ह्दय अति उमावो ।
दीन जान अपनो कर लेवो, दया की द्रष्टि लावो ।।1।।
दीन बन्धु शरणागत रक्षक, प्रणतपाल कहलावो ।
पापी समझ टेव मत त्यागो, शरणार्थी मत छिटकावो ।।2।।

सन्त ऋषि अवतार अवलिया, सब के मन उमावो ।
पीर फकीर अनेकों तारे, पुण्यात्मा बल पावो ।।3।।
मैं पापी कृतघ्नी अपराधी, अवगुण देख घबराओ ।
दीन दयाल प्रणतपाल के, अपने नाम हटावो ।।4।।
''उत्तमराम'' अरजी सुन स्वामी, अन्तर्यामी आवो ।
'रामप्रकाश' अब मरजी आपकी, भव से पार लंघावो।।5।।

भजन (22) राग आसावरी पद संगीत

सतगुरु! अरज सुनी मन भाई।
प्रणतपाल गुरु दीन दयालू, नाम की टेक निभाई।।टेर।।
बाल विनय सुनत कर कृपा, लीयो आप अपनाई ।
शरणागत की रक्षा कीनी, भव का भय मिटाई ।।1।।
अपराधी कृतघ्नी की क्रिया, दुर्गति दूर हटाई ।
सदबुद्धि परमार्थ अरपया, आतम ज्ञान लखाई ।।2।।
भव सागर का भूला भटका, अनन्त जन्म दुःखदाई ।
सतगुरु दया परम पद परख्या, ऐसी दया दिखाई ।।3।।
''उत्तमराम'' ब्रह्मवेता स्वामी, ब्रह्मविद्या परखाई ।
''रामप्रकाश'' अपनायो पूर्ण, परमानन्द परसाई ।।4।।

भजन (23) राग आसावरी पद संगीत

साधोभाई! भक्त सदा भव हरता।
प्रभु कृपा से आनन्द मांही, कछु चिन्ता नहीं करता ।।टेर।।
पूरण भरोसा हरि का चित में, अनन्य भक्ति जरता ।
जरणा जारे साधन सारे, हरि का सुमिरण ररता ।।1।।
परम धर्म की इच्छा मन में, हरि गुण शरणे सरता ।
आशा तृष्णा दूर निवारी, दुर्व्यशन से टरता ।।2।।

कर्म धर्म पुरुषार्थ साधी, श्रद्धा राम में धरता ।
शर्म धर्म और आन धर्म को, मन में नाही झरता ।।3।।
'उत्तमराम' का शरणा साचा, पाप ताप सब हरता ।
'रामप्रकाश' हरि गुण गावत, यम से नाही डरता ।।4।।

भजन (24) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! महिमा काल की भारी।
तीन गुणों के तीन लोक में, प्रकृति पॉव पसारी ।।टेर।।
राव रंक राजा भिखारी, हरि हर अज की बारी ।
समय पाय सब आवे जावे, वश में दुनिया सारी ।।1।।
कहीं हँसावे कहीं रूलावे, हर्ष शोक दातारी ।
कहीं पर महल अटारी करदे, कहीं पर कुटिया झारी ।।2।।
चाहे तो विद्वान बनावे, चाहे मूरख अनारी ।
चाहे जैसा नाच नचावे,नाचत है नर नारी ।।3।।
द्रष्ट अद्रष्ट सब जड़ चेतन में, काल ने भुजा पसारी ।
उत्पति प्रलय सृष्टि समय पर, काल करे रखवारी ।।4।।
''उत्तमराम'' अवधूत वैरागी, ब्रह्मज्ञानी मुक्त मंझारी।
''रामप्रकाश'' परमानन्द चेतन, आवागमन निवारी ।।5।।

भजन (25) राग आसावरी पद संगीत

मन रे! सज्जन आचरण धारो।
जीवन सुखद परम गति धारक, जग में सुयश वारो ।।टेर।।
सम्मानित जन का करो सन्माना, नम्रता शील अंग सारो।
दुःखियो पर दया नित राखो, शत्रुता दूर प्रहारो ।।1।।
तृष्णा त्याग अभिमान रहित हो, क्षमा को हृदय धारो।
विकर्म अकर्म पाप सब त्यागो, दुर्व्यशन दूर निवारो ।।2।।

सज्जन धर्म अनुकरण करना, विद्वज्जन संग सुधारो ।
सन्त सेवा सान्निध्य सतसंग, सतगुरु वचन विचारो ॥3॥
निन्दा चुगली झूठ तज वाणी, वृथा मत उचारो ।
सत्य मृदु वाणी गुण धारण, वैदिक वचन संभारो ॥4॥
सदा अनुग्रहित पूर्ण भावना, सज्जन धर्म हमारो ।
''उत्तम राम प्रकाश'' वह जीवन, मानवता गुण वारो ॥5॥

भजन (26) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! हम चेतन अविनाशी ।
द्रश्य अद्रश्य नाम रूप की, सष्टि सफल विनासी ॥टेर ॥
जीव ईश्वर माया कुटस्थ सो, चिदाभास मय भासी ।
परा अपरा की पाँचो वाणी, थकित होय क्या गासी ॥1॥
पाँच तत्व तीन गुण प्रपंच, सब प्रकृति की रासी ।
पाँच कोश प्राण अन्तकरण, यह भुगते चौरासी ॥2॥
ब्रह्म स्वरूप अनन्त अचल है, अखण्ड अनूप अनासी ।
सत चित आनन्द अद्वय एक सो, उपनिषद श्रुति बतासी ॥3॥
''उतमराम'' अपेची निष्प्रह, सतगुरु अलख उपासी ।
''रामप्रकाश'' गुरु मय चेला, एक स्वरूप अवासी ॥4॥

भजन (27) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! जाने सो गुरु बाला ।
सतगुरु की वाणी रहणी, लखे कोई साधन वाला ॥टेर॥
विवेक वैराग्य सहित मुमुक्षू, अंग सो युक्ति आला ।
षट् उर्मी का लेखा काटे, स्थूल प्रक्रिया टाला ॥1॥
जनम मरण का मूल मिटावे, अष्टपुरी गुण जाला ।
अन्तर बाहिर भ्रम मिटावे, शास्त्र अध्ययन पाला ॥2॥

गुरु आज्ञा आवे जावे, मर्यादा पालन हाला ।
सन्त गुरु ईश्वर एक ही माने, नाम सुमिर भय डाला ।।3।।
''उत्तमराम'' सतगुरु ब्रह्मवेता, ज्ञान मांहि मतवाला ।
''रामप्रकाश'' सतगुरु के शरणे, खुल्या भ्रम का ताला ।।4।।

भजन (28) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! कविता करे अज्ञानी ।
छन्द शास्त्र का भेद न जाणे, मन मुखि बन रह्यो ज्ञानी ।।टेर।।
संख्या सुचि प्रस्तार ना जाण्या, नष्ट उदिष्ट नहीं जानी ।
वर्ण मेरू पताका आदि, ज्ञान मर्करी नहीं मानी ।।1।।
वर्ण–मात्रा की विधि ना आई, लिखणो जाणन आनी ।
उलट सुलट आठों अंग युक्ति, गुरु मुख पढ्यो ना कानी ।।2।।
ज्ञान अर्थ अलंकार न जाण्या, यमक श्लेष न गानी ।
अनुप्रास का रूप न पाया, कविता कैसे ठानी ।।3।।
स्वर व्यञ्जन व्याकरण नहीं आया, लोभ विलोभ ना गानी ।
अक्षर मात्रा शुद्धि गणित कर, छन्द भेद गम भानी ।।4।।
गण अगण दद्धाक्षर आदि, आदि मध्य अवसानी ।
तुकबन्दी करके कविता जोड़ी, योंही भयो अभिमानी ।।5।।
''उत्तमराम'' पिंगल बिन कविता, अयस होय धन हानी ।
''रामप्रकाश'' पढ़ पिंगल रहस्य को, ज्ञानी होय विज्ञानी ।।6।।

भजन (29) राग आसावरी पद संगीत

साधो भई ! भूला पण्डित –ज्ञानी ।
अक्षर पढ्या पर भेद न जाण्या, रह गया मूल अज्ञानी ।।टेर।।
कथा करे इतिहास बतावे, मोल बिके बचकानी ।।1।।

विद्या ज्ञान बेच निलामी, भाव करे मन मानी ।
साज वाज यन्त्री कर साजी, लोक रिझावत तानी ।।2।।
व्याकरण पढे संज्ञा पढावे, जाती वाचक जानी ।
चौरासी लख जन्म जाति से, माने वर्ण मुढ खानी ।।3।।
ज्ञान ध्यान जप सुमिरण युक्ति, गुरु भक्ति रही छानी ।
जाति वर्ण का हो अभिमानी, करी धर्म की हानी ।।4।।
गुरु धर्म सम्प्रदाय ज्ञान को, त्याग करे धन मानी ।
ज्ञान ध्यान साधना भूला, वाचक भया अभिमानी ।।5।।
मन मान्या कर अर्थ सुनावे, वृथा विवाद बढानी ।
'रामप्रकाश'' सन्त नित समझावे, कूऐ भाँग घुलानो ।।6।।

भजन (30) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! क्या वाणी को गावे ।
शब्द उच्चारण कला ना आई, युक्ति भक्ति न भावे ।।टेर।।
राग समय का औचित्य नाही, कण्ठ बिना बरड़ावे ।
अलाप कलाप विलाप भरया है, योग नहीं कछु ठावे ।।1।।
साढे तीन बाजे का मिलना, अर्थ भेद बिन चावे ।
बानी शुद्धता देश काल बिन, सतसंग विधि बिन छावे ।।2।।
सन्त गुरु विद्वान संग बिन, मन मुखि भेद बतावे ।
गुरु बेमुख नुगरा नर पूरा, पढ़े शास्त्र गरलावे ।।3।।
'उत्तमराम' गुरु सत समझाया, सतसंग विधि बतलावे ।
'रामप्रकाश' मर्यादा पाले सो, सतसंग में नित आवे ।।4।।

भजन (31) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! तत्व विरले जन पाया ।
अपनी अपनी बुद्धि से पूरा, सब सन्तों ने गाया ।।टेर।।

रागिन गावे भजन बनावे, सुनी पढ़ी को भाया ।
पूरी प्रक्रिया गुरु मुख सान्निध्य, पढो अध्यात्म राया ॥1॥
सतगुरु सम्मुख पढ़िया नाहीं, मनमुखी भरमाया ।
पांच तत्व त्रिगुण स्थूल की, सब ही ने समझाया ॥2॥
सूक्ष्म प्रक्रिया अन्तस्थ की सारी, बिन जाने भ्रम भुलाया ।
पांच मुक्ति मय पांचो वाणी, युक्ति से लख लाया ॥3॥
कारण अज्ञान समष्ठि मिलकर, ईश शरीर कहाया ।
शुद्ध स्वरूप कैसे कहोगे ? अज्ञान कहां से आया ॥4॥
सृष्टि उत्पति जड़ चेतन से, कैसे मेल मिलाया ।
अध्यात्म दर्शन को पढ़िये, सरल विधि बताया ॥5॥
'उत्तमराम' ब्रह्मवेता सतगुरु, भिन्न भिन्न करे पढ़ाया ।
'रामप्रकाश' शंका भई निवृत, निर्भय निशंक अथाया ॥6॥

भजन (32) राग आसावरी पद संगीत

संतों ! बीणा बाजे इकसारा ।
हरदम तार सुरंगी बाजे, आठ पहर इककारा ॥टेर॥
पांच तंत का बीणा बणाया, तन मन वणी सारा ।
पांच प्राण की तार सजाई, बाजत सोहम् उचारा ॥1॥
भयानक रोचक यथार्थ बाजे, राग रागनी न्यारा ।
काम क्रोधादि पांच मोरणा, बाँधी तार उदारा ॥2॥
विकृत बाजे सभा बिगाड़े, जीवन होय बेकारा ।
सुक्रत बाजे जीव सुधारे, पावत है निस्तारा ॥3॥
भूमि कुण्डी जल की बीणी, झनण तणण विस्तारा ॥4॥
बीणा बिखरे तारे टूटी, टूट गया संसारा ।
दुष्ट बिगाड़े तारे सारी, सारा जन्म बिगारा ॥5॥

''उत्तमराम'' बजावे सहजे, मुमुक्षू का उपकारा ।
''रामप्रकाश'' गुरु भक्त बजावे, अपना करे उधारा ।।6।।

भजन (33) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! मैं निर्गुण से आया ।
सर्गुण परमार्थ कारण लेकर, मुमुक्षू हित कर धाया ।।टेर।।
वर वरियान ज्ञानी जन सारे, समय पाय सरसाया ।
नित्य अवतार सन्त का पावे, नैमितिक असुर खपाया ।।1।।
पूर्व वरिष्ठ ब्रह्मज्ञानी जन, अद्भुत पूण्य कमाया ।
संचित कर्म ज्ञानाग्नि जाल्या, प्रारब्ध भोग मिटाया ।।2।।
कर्म आगामी अनिच्छित सारे, दुष्ट–निन्दक ले जाया ।
अनन्त पूण्य निष्कामी पावे, शिष्य–सेवक जन पाया ।।3।।
शेष पूण्य के भाग सर्वस्व, प्रकृति गोद सजाया ।
ता कारण निर्गुण ते सर्गुण, योगमाया वश काया ।।4।।
कामी भक्त की भेंट पायके, व्याधि उत्पात मचाया ।
भक्त श्रद्धालू भेट लाय के, पावन काम लगाया ।।5।।
जिन श्रद्धा कर जाण्या महात्म, पद परमार्थ ध्याया ।
मूर्ख जीव पामर नहीं समझ्या, वृथा जन्म गमाया ।।6।।
जगत मोह की दृष्टि देखे, सो जन नर्क सिधाया ।
ब्रह्मस्वरूप सतगुरु कर जाण्या, सो पद मोक्ष समाया ।।7।।
'उत्तमराम' कृपा वश पूर्ण, अपना भाग्य जगाया ।
'रामप्रकाश' जिज्ञासु हितकर, पद अध्यात्म गाया ।।8।।

भजन (34) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! गैबी गैब समाना ।
गैब स्वरूपी सत चित आनन्द, चेतन ब्रह्म कहाना ।।टेर।।

सात शून्य अरू सर्व शून्य पर, चेतन शून्य महाना ।
गैब शून्य सो शब्द एक है, जानत सन्त सुजाना ।।1।।
गैबी ब्रह्म सो चेतन शून्य है, गैबी ब्रह्म सुहाना ।
ज्ञान आतमा गैब समावे, बन्धन रहित रहाना ।।2।।
घटाकाश और मठाकाश ज्यों, महाकाश माहि मिलाना।
अरस परस अद्वय अविनाशी, अपना आप ठहराना ।।3।।
नाम रूप प्रपंच सब माया, परा अपरा नहीं गाना ।
अद्वय एक अपेक्षा नाही, वाणी भेद गलताना ।।4।।
अजब गजब की गैब गरिमा, विरला महरम जाना
महरम जानत माहि मसाया, पाया असल ठिकाना ।।5।।
बेगम धाम निरक्षर सोई, उत्तमराम गम आना ।
''रामप्रकाश'' का देश अनूपा, ज्ञानी संत लखाना ।।6।।

भजन (35) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! चेतन है इकसारा।
घट मठ में है व्यापक पूर्ण, नाम रूप संसारा ।।टेर।।
नाम रूप माया भ्रम भासे, कल्पित विनासी सारा ।
सत चित आनन्द अद्वय ब्रह्म सो, परमानन्द विस्तारा।।1।।
माया अंश दो नाम रूप मिलि, संसृति भ्रम विकारा ।
ब्रह्म के तीन अंश मिल पांचो, जगत जाल उलझारा ।।2।।
ब्रह्म का विवृत परिणाम माया का, टांका लग भूषण प्यारा।
बिन कारण शुद्ध एक अनन्ता, अचल अखण्ड निरधारा।।3।।
ज्ञानी जानत स्वयं समावे, अज्ञानी भ्रमत गंवारा ।
ज्ञान अज्ञान, द्वन्द में भासे, निर्द्वन्दी नित न्यारा ।।4।।

तुरिये ब्रह्म है साक्षी चेतन, तुरियातीत अपारा ।
''रामप्रकाश'' सोई तत चेतन, मन वाणी से पारा ॥5॥

भजन (36) राग आसावरी पद संगीत

साधो भाई ! सन्त सदा सुखदाई ।
सतसंग करे विधि समझावे, मन की भ्रान्ति विलाई ॥टेर ॥
भ्रम मिटावे ज्ञान लखावे, जीवन सफल बनाई ।
जिज्ञासु जो शरणे आवे, भव से पार पठाई ॥1॥
जग व्यवहार की रीति बतावे, यश ऐश्वर्य तब पाई ।
परमार्थ के साधन लखावे, पाय परमानन्द सांई ॥2॥
विवेक वैराग्य का साधन साधे, आपा मेटत भाई ।
सतगुरु शरण सेवा श्रद्धा से, चेतन ब्रह्म लखाई ॥3॥
'उत्तमराम' गुरु परम परमार्थ, ब्रह्म स्वरूप सदाई ।
'रामप्रकाश' निर्द्वन्द निर्पेक्षी, पाप ताप नहीं ताई ॥4॥

भजन (37) राग राजेश्वरी, हेली पद संगीत

हेली ए ! निशि दिन हरि सेवा रहे, सन्त सदा सुखधाम ॥टेर॥
तन सेवा मन चिन्तन शुभ, वाणी कथा सुण नाम ।
परहित का कारज करे, विश्व हित अभिराम ॥1॥
सत उपदेश दे भक्त को, नशा मुक्ति जन आम ।
दुर्व्यशन दूरा करे, हरे मोह मद काम ॥2॥
सनातन जन समाज को, जाग्रति देवे तमाम ।
अज्ञान निवृति उपाय से, साधन ज्ञान आराम ॥3॥
क्षमावन्त कृपालु वह, द्वैष रहित निष्काम ।
धर्म मर्यादित जीवन में, गुरु भक्ति मय राम ॥4॥

परमार्थ में हरदम रहे, वेतन बिना अठयाम ।
'रामप्रकाश' नित सन्त को, वार वार प्रणाम ।।5।।

भजन (38) राग राजेश्वरी, हेली पद संगीत

हेली ए ! सन्त सेवा कर लीजिये, जग में कर उपकार ।।टेर।।
तन मन वाणी धन सदा, जानो चार प्रकार ।
मानव देही पायके, लखिये ज्ञान विचार ।।1।।
तन से सेवा कर पाविये, सर्व श्रेष्ठ उपचार ।
मन से शुभ चिन्तन कर, शास्त्र बोध सुधार ।।2।।
वाणी शुभ विचार दे, वेद विधि गुणसार ।
दीन दुःखी शुभचार में, धन सेवा संसार ।।3।।
नशे व्यशन सब त्याग के, शुभ गुण सात्विक वार ।
सन्त साहित्य अभ्यास कर, धर्म ग्रन्थ पढ़ पार ।।4।।
'उत्तमराम' गुरु ज्ञान दे, धारे जिज्ञासु धार ।
'रामप्रकाश' सन्त साख दे, सेवा किये भवपार ।।4।।

भाजन (39) राग राजेश्वरी, हेली पद संगीत

हेली ए ! सत संगत सुखरूप है, करते सन्त सुजान ।।टेर ।।
चल दल तरू मन के लिये, साधन रूप प्रधान ।
शमदम श्रद्धा संग ले, करते सज्जन महान ।।1।।
साधन धाम तीर्थ महा, जप तप यज्ञ समान ।
नाम समिरण विधि देत है, सत आतम ब्रह्मज्ञान ।।2।।
हरि कथा नीति कथा, जीवन वृत विज्ञान ।
सतसंग में पावे सभी, परम शान्ति कल्यान ।।3।।
''उत्तमराम'' सतगुरु सदा, ऋषि मुनि करते ध्यान ।
''रामप्रकाश'' गुरु शरण में, जीवन भया परमान ।।4।।

इति श्री उत्तम ज्ञान कटारी–भजन भाग समापन ॥

स्वामी रामप्रकाशाचार्य 'अच्युत' कृत

छुटकर काव्य

दृष्टान्त –कवित– सिद्धान्त

काया पांच तत्व की है, जीव है किरायेदार ।
अन्न जल औषधि ये , भरता किराया है ॥
पंचायत की धर्मशाला, शुभ कर्म हेतु मिली ।
संसार के काम धाम, श्वास को बिताया है ॥
जप तप ज्ञान ध्यान, कमाई तो कर प्यारे ।
एक दिन छोड़ देना, घर तो पराया है ॥
सतगुरु वेद वाणी, चेतन कहत नित ।
सन्त 'रामप्रकाश' यों जीवन बिताया है ॥1॥

प्रवृत्ति रू निवृति कर्म, भोगत है आय कर ।
मोह के प्रपंच मांहि, भ्रम में भुलाया है ॥
शुभ कर्म त्याग दिये, संसृति में फंस गयो ।
पंच धर्मशाला वाली, बात विसराया है ॥
और के मकान को, मानत आपनो कर ।
देह पंच भूतन की, माल तो पराया है ।
खाली नहीं करे तब, मारे मुग्दर मार ॥
सन्त 'रामप्रकाश' यों बाँध के भगाया है॥2॥

जीव कहे देह मेरी, साक्षी इन्द्रिय अन्तःकरण ।
प्रमाण पट्टा तो नहीं, जन्म से रहाया है ॥
पंचों ने पुकार करी, वेद ग्रन्थ प्रमाण में ।
पट्टा रू नक्सा साच, साक्ष्य ठहराया है ॥
तब जीव हार मानी, कुर्क में आय यम ।
पकड़ के मार कूट, बांध के निकाया है ॥
दण्ड जुर्माना भोगे, चौरासी में भव भव ।
सन्त 'रामप्रकाश' यों, मोह फल पाया है ॥3॥

इन्दव छन्द

जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति भेद हूं, तुरिय रूप का तुरिये साखी ।
तुरियातीत ब्रह्म सत चेतन, अद्वय अरूप अनूप सो भाखी ॥
सोहम् सोहम् आप सनातन, नहीं प्रपंच संसार दूलाखी ।
'रामप्रकाश' उत्तम चित पूरण, एक अगोचर और ना राखी ॥4॥

एक अपार अनूप अरूप जु, सत चित आनन्द सो अविनासी ।
अस्ति भाति लख प्रिय अनुपम, ज्योतिर्मय स्वयं आप प्रकासी ॥
व्यापक घन चराचर अद्वय, सो निरपेक्ष अकारण रासी ।
'रामप्रकाश'सो उत्तमराम है, निर्गुण, सर्गुण सोई विलासी ॥5॥

विवेक वैराग बिना फकीर ना, स्वांग फकीर ना यश कमावे ।
भगवत भक्ति बिना भक्त न होवत, धन बिना नहीं धनी कहावे ॥
साधन के बिना साधु न होवत, सांग पहन के भेष लजावे ।
'रामप्रकाश'अन्तस्थ भाव बिना, बाहिर नाम सो काम न आवे ॥6॥

प्रभू पूजा बिन पुजारी न होवत, संशय रहित हो सो सन्त कहावे।
ज्ञान बिना ज्ञानी नहीं होवत, ध्यान बिना नहीं ध्यानी धरावे ।।
योग बिना योगी किमि होवही, राजस भोग सो भोगी बनावे।
'रामप्रकाश' अन्तस्थ भाव बिन, बाहिर भेष सो काम न आवे ।।7।।

सेवा किये बिन सेवक नाहिन, शिष्यत्व बिना शिष्य नहीं भावे।
गुरुत्व बिना गुरु गम हीन है, सम्पत्ति बिना नहीं सेठ कहावे ।।
किसान कृषि बिन कैसे कहावत, बिना मजुरी मजदूर न आवे।
'रामप्रकाश' अन्तस्थ क्रिया बिन, बाहिर नाम सो काम न आवे ।।8।।

तत्व चिन्तन

सूक्ष्म वाष्प कण जल के राजत, भूमि की गन्ध सभी में आवे।
सूक्ष्म वायु गति सब ठा व्यापक, तेज बिना कोई वस्तु ना भावे।
आकाश ही अवकास दिलावत, परस्पर मेल हो सृष्टि उपावे ।।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति में अजब लीला हो गजब रचावे ।।9।।

वायु के संग अन्य चारों तंत, तेज में अन्य चारों विराजे।
जल के साथ में चारों अन्य भू, गन्ध अन्य सभी ठाँ काजे।।
व्यापक है महाकस ही सर्वज्ञ, ताहि बिना अवकास न माजे।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति है, अजब लीला हो गजब नवाजे।।10।।

जठराग्नि सब जीवन माहि हो, तन तेज होकर भोज पकावे।
वड़वाग्नि जल माहि समायके, आपनो तेज हो प्रत्यक्ष दिखावे ।।
भूमाग्नि जड़ पृथ्वी उत्पादन, पत्थर लकड़ी धातु में समावे।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति है, अजब लीला हो गजब रचावे।।11।।

भूमि स्वरूप स्थूल हो भासत, नाना धातु मय साकार लखावे।
जल स्वरूप तरलता हो कर, हर ठां आपनो रूप बनावे।
तेज बिना निर्बल सब सूकत, छीजत नासत रूप दिखावे।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति हो, अजब लीला हो गजब रचावे॥12॥

वायु ही सब को गति प्रदान दे, वायु के संग दोड़तो जावे।
सिन्धु को वाष्प तेज बनावत, वायु उठावत घन बनावे।
तेज स्वरूप है व्यापक सब में, रवि को तेज सर्वगति लावे।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति ही, अजब लोला हो गजब रचावे॥13॥

पाँचो तत्व ही परस्पर मिलत, ज्ञान विज्ञान अज्ञान समावे।
नभ वायु जल तेज भूमि मिला, चेतन आश्रित गति सब पावे॥
प्रकृति संचालक सूक्ष्म अति सूक्ष्म, नभ ते अनन्त गुणा शूक्ष्म भावे।
'रामप्रकाश' यह प्रकृति की विकृति में, माया का परिणाम रचावे॥14॥

मन का मनन

चलदल पत्र पताक समान है, चंचल मन स्वभाव धूतारो।
वायु वेग रु हाथी ते सबल, राव रु रंक नचावन हारो॥
मन की जीत सो सब जग जीते, मन जीते सब जीवित प्यारो।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो॥15॥

मन ही सतोगण अंश है सुन्दर, मन ही माया सब द्रश्य संसारो।
महा प्रबल सब ही को नचावत, इन्द्रियन द्वार ते भोगत सारो॥
अद्रष्ट होय रह्यो तन भीतर, आवागमन भोगावन हारो।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो॥16॥

चंचल चोर वायु ते है सूक्ष्म, जावत आवत भागन हारो।
बन्धन कारण यह मन है अरूणा यह नहीं मम मोक्ष मझारो ।।
मन के हार ते हार ही होवत, मन के जीते ही जग जीतारो ।।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो।।17।।

इन्द्रिय प्राण जगावत है यह, चतुर्भुज हो चिदामास धुतारो।
ग्रन्थ अनेक प्रयोजन धारक, हर्ष रू शोक मनावन हारो ।
भेद रु भ्रम अध्यास उपासत, नाना विषय पथ राचन बारो ।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो।।18।।

यह मन आप को पण्डित मानत, कभी यह लोक रिझावन हारो ।
कभी यह मन बने महान ही, कभी यह हीन के भाव विचारो ।।
कभी यह सृष्टि रचावत पल में , कभी प्रलय कर शून्य सम्भारो ।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो।।19।।

मन ही एक अनेक ही होवत, शुद्ध अशुद्ध को वाचन हारो ।
कर्म उपासन ज्ञान रू ध्यान से, आप ही नियम बनावत सारो ।।
ग्रन्थ रू पन्थ की रीति रू नीति यें , मन की माया है देव धुतारो ।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो ।।20।।

ब्रह्म नहीं यह ब्रह्म समान है, प्रपंच माहि हें रू माया ते न्यारो ।
मन की गति लखे सिद्ध साधक, साधन संग गुरु मुख प्यारो।।
कोइक जान सके यह सामर्थ, गुरु कृपा हरि हाथ उजारो ।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो।।21।।

कभी यह ब्रह्म स्वरूप बने कभी, माय में राचत मूर्ख हजारो ।
कभी यह त्याग वैराग दिखावत कभी विकार समूह पिटारो ।।
कभी यह शाहनशाह बने मुढ़, कभी महा मूर्ख विचारन वारो ।
'रामप्रकाश' है प्रबल माया मन, यही कुटस्थ स्वरूप हमारो।।22।।

शिव परिवार–गृहस्थ ज्ञान

मयुर का भक्ष जो साँप है अरू साँप का भक्ष है मूषक प्यारा ।
सिंह रू बैल को आपस वैर है, शिव परिवार में साथ है सारा ।।
वैचारिक भाव से विरोधास में, सब की एकता प्रेम विचारा ।
'रामप्रकाश' है ग्रहस्थ उदाहरण, ऐसे रहो सब नियम अपारा ।।23।।

कार्तिक पुत्र का वाहन मोर है, गणपति का वाहन मूषक प्यारा ।
शिव गले में सांप विराजत, वाहन वृषभ, उमा सिंह धारा ।।
शीश पे गंग रू भाल में आग है, काम पे वाम भी शील आचारा ।
'रामप्रकाश' है ग्रहस्थ शिक्षा यह, ऐसे रहो सब नियम आचरण ।।24।।

काम पे वाम रू आग पे गंग है, बैल पे सिंह को अंकुश भारी ।
मूषे पे नाग रू नाग पे मोर है, विष पर अमृत शीश को धारी ।।
शैल वनवास ऋद्धि सिद्धि साथ में, कार्तिक गणपति सुत आज्ञाकारी ।
'रामप्रकाश' है ग्रहस्थ शिक्षा यह, ऐसे रहो सब नियम आचारी।।25।।

पुत्रन पर अंकुश भूत मण्डल है, भूतन पर भभूत है डारी ।
वाहन सब के आपस वैर है, सब पर शासन शिव को भारी ।।
प्रेम प्रतीक परिवार विचार से, विरोधाभास भी सुख भण्डारी ।
'रामप्रकाश' है ग्रहस्थ शिक्षा यह, ऐसे रहो सब सोच विचारी ।।26।।

अजब परिवार में गजब मेल है, ऋद्धि सिद्धि बहु दान दातारी।
आप फकीर बने भोलेनाथ, शंकर शिव स्वरूप सम्भारी ।।
शील स्वरूप प्रतिव्रता घर, जप तप योग समाधि को धारी।
'रामप्रकाश' है ग्रहस्थ शिक्षा यह, ऐसे रहो सब कर्तव्य विचारी।।27।।

चिन्तन

विश्व में योग संयोग वियोग है, योगी सो जीवन योग विचारे।
भाग्य प्रारब्ध ते होय संयोगजु, सम्पति इष्ट कुल मित्र हमारे ।।
प्राप्त वस्तु रु व्यक्ति वियोग में , हर पल तत्पर नास निहारे।
'रामप्रकाश' निश्चय कर मानव, निश्चित वियोग सदा ही सदारे।।28।।

इन्द्रिय दोष है कर्णापाटव, द्रष्टि रू हस्तादि काम कमावे ।
लिप्सा लोभ के कारण दोष है, प्रकार वर्णाऽक्षर भूल भुलावे ।।
भ्रम गुरु लघु काव्य रू गद्य में , भाषा गति कर अर्थ बतावे ।
'रामप्रकाश' यो ग्रन्थ में दोष है, कवि में चार विकार लखावे ।।29।।

आदि मध्य दद्धाऽक्षर जान हूं, अर्थालंकार छन्द भेद लखावे ।
मन भय रूप धरे रूप लघु वर, काव्य में ज्ञान अलंकार धरावे ।।
जस रत रूप में मित्र अरि लख, दास उदास के रूप जनावे ।
'रामप्रकाश' पढे बिन पिंगल, मूढ कवि गण काव्य बनावे ।।30।।

यमाताराजभा नसलगू जान लो, छन्द की जाति प्रजाति को जाने।
वर्णिक मात्रिक भेद को जान ले, आठ हूं अंग विपरीत कर माने ।।
भाषा रू भाव प्रबन्ध पिछानत, सो अनुप्रास के भेद को छाने।
'रामप्रकाश' छन्द शास्त्र पढ़े बिन, मूढ पिंगल बिन काव्य बखाने।।31।।

रसास्वाद इन्द्रियरस भटकन, काषाय सुक्ष्म अहंकार बढ़ावे ।
चित विक्षेप से चंचलता वंश, चित सुषोप्ति माहि समावे ।।
योग रू ज्ञान रू हरि भक्ति मय, चार ये विघ्न उत्पात मचावे ।
'रामप्रकाश' लखो कर संयम, उत्तम गुरु मुख दोष हटावे ।।32।।

राग संगीत में ताल रू तान से, गायक कण्ठ को स्वेद बहावे ।
बाग लगावत-घट बनावत, तिय शिक्षिका काम सिखावे ।।
षट्रस व्याख्या पाक सुधारत, षट्रस, काव्य को खुब सजावे ।
'रामप्रकाश' साधक कर परिश्रम, आनन्द और के और ही पावे ।।33।।

जहाँ द्रष्टि तहां सृष्टि बने वर, एक दिशा द्रश्य दर्श दिखावे ।
तीन दिशा गम अद्रिष्ट रहे वह, द्रष्टि सृष्टि वाद को खूब लखावे ।।
ऐसे ही त्रिपाद रहे परिपूर्ण, एक ही पाद में सृष्टि चलावे ।
'रामप्रकाश' गुरु उत्तम दयालते, वेदान्त सिध्दान्त से ज्ञान दिलावे ।।34।।

शरणागति

जीवन में अपराध किये बहु, क्षमा करो प्रभु ताप निवारो ।
दम्भ पाखण्ड में बीत गये सब, केतिक जीवन के क्षण धारो ।।
कुल कान की रीति में नीति भई भव, सागर जन्म रू मरण दुःखारो ।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत, दया करो गुरु भव से तारो ।।35।।

जान अजान में बीत गये दिन, ज्ञान न ध्यान में चित न लागो ।
सुमिरण साधन संग भयो नहीं, विषयन घेरि लियो मन सागो ।।
आन उपासन तीर्थ भटकन, मन्दिर धाम में जात हो भागो ।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत, दया करो अब मोहि न त्यागो ।।36।।

हे प्रभु दीन दयाल दयाकर, कृपा सिंधु मेरी ओर निहारो ।
दीन गरीब अनाथ हूं निर्बल, पाप रू ताप से पीड़ित भारो।।
कृतघ्नी मतिहीन अपराध में , व्यर्थ चेष्टा में आयु उखारो ।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत, कृपा करो गुरु भव से तारो ।।37।।

नाथ अनाथ के हो तुम समर्थ, दीनबन्धु दीनन हित भारो ।
पाप रू ताप निवारण के हित, समर्थ युक्ति रू भक्ति विचारो ।।
भव खेद हरो सब जीवन के तुम, द्रष्टि कृपांकुर और निहारो।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत, आपनो जान के भव से तारो ।।38।।

भेद रू खेद भर्‌यो चित भीतर, वेद निर्वेद ना मति मौह पायो ।
नाटक रूप संसार की संसृति, भटक रह्यो भव भ्रान्ति न पायो ।।
भ्रान्ति में शान्ति ना आई कछुचित, साधन हीन अज्ञान अघायो ।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत पूत कपूत हो शरण में आयो ।।39।।

विवेक वैराग्य विहीन रह्यो चित, भोगन में भटकत आयु विहाई ।
परम विकारन मोहि रह्यो भ्रम, मोह कामादिक घाट नू थाई ।।
मान अहंकृत भर्‌यो चिंता उर, अज्ञ रू तेज्ञ ना ज्ञान उपाई ।
'रामप्रकाश' अब हूं शरणागत, बोध विहीन को शरण दिलाई ।।40।।

आधि रू व्याधि उपाधि के ढिग, तन मन परिजन दुःख सताई ।
अध्यात्म रू अधिदैविक ताप में, अधिभौतिक दुःख खूब बढ़ाई ।।
तन मन वाणी में पाप भरे बहु, संतप्त संतति धन विहाई ।
:रामप्रकाश' अब आयो शरणागत, रक्षा करो प्रभु आप सदाई ।।41।।

आत्मघाति अज्ञान में संचति, प्रारब्ध मन्द अति दुःखदाई ।
मात रू तात बन्धु कुल मीत हूँ, परिजन जाल ते विपति बढाई ।।
संगी नहीं साथ रू कोई नहीं हाथ में, भयो अनाथ सनाथ के ताई ।
'रामप्रकाश' अब आयो शरणागत, रक्षा करो गुरुदेव सदाई ।।42।।

भटक रह्यो भव सागर में घन, अनन्त जन्म के दु :सागर मांई ।
दुस्तर अथाह चट्टान भरा जल, टूटी से नाव तर्‍यो किमि जाई ।।
तीर्थ नियम किये बहु मनमुख, शास्त्र पढ़े चित संशय बढाई ।
'रामप्रकाश' सामर्थ गुरु बिन, भटक रह्यो भव थाह न पाई।।43।।

सामर्थ सतगुरु ब्रह्मवेता वर, क्षमा दया प्रिय वाणी सुनावे ।
अक्रोध वैराग्य रू शान्त चित्त पूरण, दाता निर्लोभी निडर रहवे ।।
शोक सन्देह रहित स्थिर चित, व्यर्थ चेष्ठा बिन दीन कहावे ।
'रामप्रकाश' वन्दे गुरु उत्तम, सतगुरु सोई भव पार ले जावे ।।44।।

गुरु बिन जप तप नियम सब कहि, व्यर्थ तीर्थागम पूर्ण्य करावे।
गुरु बिन यज्ञ रू दान करे बहु, अन्न धन्न धाम रू पट लुटावे ।।
गुरु बिन वेद पुराण पढ़े ग्रन्थ, अर्थ के भेद को जान ना पावे ।
'रामप्रकाश' गुरुपद वन्दन, गुरुकृपा फल जीवन लावे।।45।।

चर्म द्रष्टि में डूब रहे सब, पशुवत आँख देखनहारी।
दिव्य द्रष्टि में इन्द्रिय सहाय से, बुद्धि के योग ते ज्ञान विचारी ।
भक्ति रू ज्ञान वैराग्य से पावत, समद्रष्टि मुमुक्षु वेद सुधारी ।
'रामप्रकाश' चक्षु सम दर्पण, भानु संयोग ते मुख निहारी ।।46।।

ज्ञान इन्द्रिय पंच, कर्मइन्द्रिय पंच, चार अन्तस्थ पंच प्राण बखानो।
अज्ञान, कुटस्थ संग चिदाभास ये, प्राकृतिक पुर्यष्टक भेद को जानो ।।
संचित कर्म रू आगामी कर्म ये, ऐषणा त्रय युत ज्ञान सुजानो ।
'रामप्रकाश' आवागमन कारण, सूक्ष्म देह जरा जन्मानो ।।47।।

सतरह तत्व युत सूक्ष्म देह संग, कारण शरीर को ज्ञान विचारो ।
संचित आगामी रू वासना जीव की, अष्ठ पुरी संग कुटस्थ सारो ।।
मिले चिदाभास जीवात्म् मान हूँ , आवागमन को हेतु जमारो ।
'रामप्रकाश' ज्ञानाग्नि जालत, जन्म रु मरण मिटे भव भारो ।।48।।

अहंता ममता त्वंता तीनहूँ, सुत वित लोक की ऐषणा तीनों ।
कारण सूक्ष्म स्थूल देह को, मूल मिटे सुख पावत झीनो ।।
विवेक वैराग संपुट मुमुक्षूत्व, पावे बड़भाग पूण्यात्म लीनो ।
'रामप्रकाश' उत्तमगुरु शरण में, सत चित आनन्द रूप को चीनो ।।49।।

देश रू काल वस्तु परिस्थिति वस, कर्म रू धर्म बदलते जावे ।
दैहिक भौतिक दैविक ताप भी, परिस्थिति उत्पन्न करे मन भावे ।।
भूत भविष्य रू वर्तमान काल में, समय प्रभाव से ताप दिखावे ।
'रामप्रकाश' प्रारब्ध वश संचरण, अपने कर्म सहायक थावे ।।50।।

बीज अनेक विविध भांतिन, भू जल पाय परिणाम दिखावे ।
अंकुर बिरवा पौधा रू वृक्ष हो, ठूँठ रू लाठ सो पाटिया थावे ।।
टेबल कुरसी द्वार बने बहूं, नाम रू रूप परिणाम को पावे ।
'रामप्रकाश'ये माया परिणाम है , सच्चिदानन्द को विवृत कहावे ।।51।।

जो वस्तु हर बार हो परिवर्तित, ताहि शास्त्र परिणाम बतावे ।
एक स्वरूप में नित्य रहे वत, स्थिर अचल सत्य रहावे ।।

भासत है नाहिं बदलत रूप ही, सोहि सो विवृत वाद लखावे ।
'रामप्रकाश' वेदान्त सिद्धान्त में, परिणाम रू विवृत वाद कहावे ।।52।।

लोह कड़ा रू पत्थरी के माहि जु, आग बसे, चकमक युग माई ।
माचिस तुलिका में रोगन आग है, घिसे बिना नहीं प्रकट दिखाई ।।
तैसे ही शिष्य रू गुरु में ज्ञान है, समर्पण बिन नहीं ज्ञान अथाई ।
'रामप्रकाश' मिले गुरु उत्तम, हो ब्रह्मज्ञान तो मोक्ष पठाई।।53।।

सतगुरु पन्ना अमूल्य नग है, शिष्य हीरा को क्रान्ति मिलाई ।
साधन पूर्णिमा योग मिले जब, विवेक वैराग्य मुमुक्षूता आई ।।
चन्द्र की ज्योति मिले ब्रह्मज्ञान ही, मोल अमोल पावे शिष्यताई ।
'रामप्रकाश' मिले गुरु उत्तम, ब्रह्मवेता सो मोक्ष पठाई ।।54।।

भक्ति के चक्षु पावे जन उत्तम, श्रद्धा की ज्योति जगे उर माई ।
ज्ञान को दर्पण गुरु मुख पावत, पारा विश्वास की लाग लगाई ।।
भानु वैराग्य जगे जब उज्वल, सतगुरु दर्शन देवत आई ।
'रामप्रकाश' लखावत चेतन, आवागमन को मूल मिटाई।।55।।

विवेक में श्रद्धा आय मिले जब, सतसंग में समाधान को गावे ।
शम दम तितिक्षा ओ उपराम के, बिना वैराग्य कोई नहीं पावे।।
षट् सम्पति साधन संग बिना यह, विवेक वैराग्य नहीं फल लावे ।
'रामप्रकाश' मुमुक्षू के मन जगे, मुमुक्षूता अधिकारी हो जावे ।।56।।

सतगुरु हाथ हुमाद समान है, जाहि के शीश धरे भ्रम जाई ।
भाग्य जगे रू भगे कर्म दुर्जन, मोह कामादि विकार विलाई ।।
संचित ज्ञानाग्नि जाल परे सब, साधन सहित ब्रह्म ज्ञान उपाई ।
'रामप्रकाश' संयोग परे शुभ, योग कुयोग सो दूर भगाई ।।57।।

दोहा–छन्द

अधिकारी शिष्य उत्तम हो, मिले उत्तम गुरु खास।
उत्तम श्रवणादि साधना, उर हो रामप्रकाश ॥58॥

सतगुरु शरण की ओट रह्यो नित, स्मृति हीन से आयु विहानी।
कर्ण पाटव दोष भरे भ्रम, रस अलंकार की गति विलानी॥
गद्य रू पद्य में स्वर व्यञ्जन, लघु घी काव्य कला नहीं मानी।
सतगुरु 'उत्तमराम' पकाशते, श्यामानन लेखनी में गति आनी ॥59॥

शास्त्रबोध वर्णाऽक्षर व्याकरण, भाषा प्रवीण नहीं मति जानी।
उतज्ञतज्ञानुवृति साधक हेतु भी, ज्ञान न ध्यान विधि नहीं आनी॥
मुँआ बिछाय के जीवित ओढके, सतगुरु शरण रह्यो नित छानी।
सतगुरु 'उत्तमराम' कृपाल ते, रामप्रकाश युक्ति कछु मानी ॥60॥

सन्तवाणी कछु वेद न भेद है, साधन निश्चय मति नहीं आनी।
ब्रह्म तत्व अति सूक्ष्म तत्व को, जान सक्यों नहीं बुद्धि अजानी॥
हरिसिंह रचित ये ज्ञान कटारी की, टीका लिखी लघु बुद्धि सिरानी।
सतगुरु 'उत्तमराम' प्रसाद ते, रामप्रकाश करी श्रवण बानी ॥61॥

इन्दव छन्द

तीन हूं ताप त्रिकाल में शान्त हों, ओम शान्ति शान्ति शान्ति उचारो।
तीन शरीर के तीन हूं पाप भी, ओम शान्ति हरि ओम पुकारो।
ग्रन्थ समापन मौन गहै कहि, ओम शान्ति शान्ति हरि राम विहारो।
'रामप्रकाश' मन शान्त भयो चित, चिन्तन सच्चिदानन्द हमारो ॥62॥

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद

तत्त्वज्ञ स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी 'अच्युत'

"पंचीकरण ग्रन्थ को आध्यात्मिक प्रेमी अर्थात् वेदान्त के स्वाध्यायी जिज्ञासु पुरुष सभी जानते हैं। सरल, सरस, गुजराती भाषा में रचनाकार श्रीरामजी महाराज के परम शिष्य (लाहौर पंजाब निवासी) श्री सन्त हरिसिंहजी महाराज कृत 'ज्ञान कटारी' ग्रन्थ भी विद्वानों का कण्ठाभरण रहा है। इस ग्रन्थ की टीकाकरण प्रस्तुत है। आशा है मुमुक्षु जनों की इच्छित सामग्री लाभदायक रहेगी।"

आपका ही

टीकाकार